संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

॥ ऋषि प्रसाद ॥

र्ष : १२
क : १११
र्च २००२
ाल्गुन मास
क्रम.सं. २०५८

हिन्दी

महाशिवरात्रि : १२ मार्च (नासिक में)



पूज्यपाद
संत श्री आसारामजी बापू

महाशिवरात्रि शिवतत्त्व साक्षात्कार का महापर्व है। जिनको ये साक्षात्कार होता, पूजते उन्हें सर्व हैं ॥
आकार यहाँ हैं दो जरूर, पर तत्त्व दोनों एक है। बहु देह धारत देव, फिर भी एक का ही एक है॥



राजकोट में मुख्यमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने पूज्य बापूजी का स्वागत किया।
वही माला प्रसाद रूप में उन्हें मिली एवं विजयी भव का आशीर्वाद भी।

आज रे आनंद भयो, मारा गुरुजी आया पामणा। भावविभोर हो गये भावनगर एवं राजकोट के श्रद्धालु जब हुआ पूज्य बापू का आगमन॥

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : १२
अंक : १११
९ मार्च २००२
फाल्गुन मास, विक्रम संवत् २०५८

सम्पादक : कौशिक वाणी
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रु. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(३) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(३) आजीवन : रु. ७५०/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) पंचवार्षिक : US $ 80
(३) आजीवन : US $ 200

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
e-mail : ashramamd@ashram.org
web-site : www.ashram.org

प्रकाशक और मुद्रक : कौशिक वाणी
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' सोमवार से शुक्रवार सुबह ७.३० से ८ एवं शनिवार और रविवार सुबह ७.०० से ७.३०
संस्कार चैनल पर 'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २.०० से २.३० एवं रात्रि १०.०० से १०.३०

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।



अद्भुत होली

छलकी रामनाम रसधार,
सात्त्विक रंगों की बौछार,
बरसी गुरुकृपा अपार,
भीगी तन मन की चुनरिया रे ।

ब्रज में श्याम ने खेली,
गोप ग्वाले थे हमजोली,
संग गोपियन की टोली,
भीगी तन मन की चुनरिया रे ॥

गुरुज्ञान की अद्भुत होली,
साधक भक्तों ने संग खेली,
उज्ज्वल हुई हृदय की चोली,
भीगी तन मन की चुनरिया रे ।

लहराया सुख का सागर,
चितवन की छलकी गागर,
घट घट में नटवर नागर,
भीगी तन मन की चुनरिया रे ।

रंगत हरिनाम की न्यारी,
छाई प्रभुनाम की खुमारी,
मिटी चाहत चिंता सारी,
भीगी तन मन की चुनरिया रे ।

श्रद्धा भक्ति के रस संग,
चैन अमन दिल की उमंग,
साक्षी आत्मभाव की तरंग,
भीगी तन मन की चुनरिया रे ।

- जानकी ए. चंदनानी 'साक्षी'
अमदावाद (गुजरात).

*



अध्यात्मज्ञान का नित्य अभ्यास करें..

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ।

'अध्यात्मज्ञान में नित्य स्थिति औ तत्त्वज्ञान के अर्थरूप परमात्मा को ही देखना-यह सब ज्ञान है और जो इससे विपरीत है, वह अज्ञान है - ऐसा कहा है ।' (भगवद्गीता : १३.११

संसार में जो भी दुःख हैं, सब आत्मा के अज्ञान के कारण हैं, अध्यात्मज्ञान की कमी के कारण हैं । अध्यात्मज्ञान का आदर न करना ही सब दुःखों का मूल है । अतः, जो सदा के लिए सब दुःख मिटाना चाहता है, उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँचना चाहता है और अपना मानव-जीवन सफल करना चाहता है उसे नित्य, निरंतर अध्यात्मज्ञान में निमग्न रहना चाहिए ।

समर्थ रामदासजी ने कहा है : **'भैंस के सींग पर राई का दाना जितनी देर ठहर जाय, उतनी देर भी मन अगर अध्यात्मज्ञान से रहित हो जाता है तो पतन होने की संभावना रहती है ।'**

भगवान कहते हैं : **अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं...**

अध्यात्मज्ञान और लौकिक ज्ञान में फर्क है अध्यात्मज्ञान है अपने-आपका ज्ञान और लौकिक ज्ञान है इधर-उधर का ज्ञान । इधर-उधर का ज्ञान तो ढेर सारा है किन्तु अपने-आपके ज्ञान की कमी है, अपने-आपका पता नहीं है । शरीर के सभी अवयवों का ज्ञान डॉक्टर भले रखें, लोहे-लकड़ी ईंट-चूने का ज्ञान भले इंजीनियर के पास हो

राजनीति का ज्ञान राजनेता भले रखें परन्तु जब तक अपने-आपका ज्ञान नहीं है तब तक दुनियाभर का सब ज्ञान मिलने पर भी सच्चा सुख मिलना संभव नहीं, सच्चा जीवन जीना संभव नहीं।

अतः, अध्यात्मज्ञान का नित्य अभ्यास करें। अध्यात्मज्ञान में नित्य, निरंतर रत रहें और सर्वत्र, सबकी गहराई में जो सत्-चित्-आनंदस्वरूप परमात्मा है उसको देखने की सावधानी रखें। जैसे पंखा अलग है, ट्यूबलाइट अलग है, बल्ब अलग है, टी.वी. अलग है, फ्रिज़ अलग है, हीटर अलग है फिर भी तत्त्वरूप से सत्ता सबमें विद्युत की है, ऐसे ही गाय-घोड़े आदि पशुओं में, पक्षियों में, मनुष्यों में, सबमें नेत्रों के द्वारा देखने की सत्ता उस सर्वेश्वर की है, कानों के द्वारा सुनने की सत्ता उस परमेश्वर की है, नाक के द्वारा सूँघने की सत्ता भी उस सच्चिदानंद की है। उस सच्चिदानंदस्वरूप को सबमें देखने का नित्य अभ्यास करें। नित्य इस अध्यात्मज्ञान में स्थित रहें और तत्त्वज्ञान के अर्थरूप उस परमात्मा को सर्वत्र देखें। यही ज्ञान है, यही ज्ञान का सदुपयोग है और इसके विपरीत जो है वह अज्ञान है।

'मैं और मेरा... तू और तेरा... यह अच्छा है... यह बुरा है... यह ब्राह्मण है... यह क्षत्रिय है... यह वैश्य है... यह शूद्र है...' सबको भिन्न न मानकर इन सबकी गहराई में उस परमात्मा का ज्ञान रखना ही सार है, बाकी का सब व्यावहारिकता है। अध्यात्मज्ञान प्रगाढ़ होता है तो बुद्धि विशाल होती है और अल्प होता है तो बुद्धि संकीर्ण होती है। संकीर्ण मति में ही 'मैं-मेरे... तू-तेरे...' का भेद उत्पन्न होता है। जिसने 'मेरे-तेरे' के भेद को मिटाकर सर्वत्र एवं सदा स्थित सच्चिदानंदस्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लिया उसके लिए कौन अपना और कौन पराया ?

जो भगवान के पूर्ण भक्त हैं, जो तत्त्वज्ञान के अर्थरूप परमात्मा में नित्य रमण करते हैं वे महापुरुष ईश्वर के अभिन्नस्वरूप होते हैं। उनके हृदय में नित्य, निरंतर भगवद्स्मरण होता रहता है। उनके रोम-रोम से भगवद्भाव उभरता है। उनके चित्त में सच्चिदानंद परमात्मा के अनुभव की तरंगें निरंतर उभरती रहती हैं।

ऐसे महापुरुष बनने के लिए क्या करना चाहिए ?

श्री रामानुजाचार्य ने कुछ उपाय बताये हैं; जिनका आश्रय लेने से साधक सिद्ध बन सकता है। वे उपाय हैं :

(१) विवेक : आत्मा अविनाशी है, जगत विनाशी है। देह हाड़-मांस का पिंजर है, आत्मा अमर है। शरीर के साथ आत्मा का कतई सम्बन्ध नहीं है और वह आत्मा ही परमात्मा है। इस प्रकार का तीव्र विवेक रखें।

(२) विमुखता : जिन वस्तुओं, व्यसनों को ईश्वर-प्राप्ति के लिए त्याग दिया फिर उनकी ओर न देखें, उनसे विमुख हो जायें। घर का त्याग कर दिया तो फिर उस ओर मुड़-मुड़कर न देखें। व्यसन छोड़ दिये तो फिर दुबारा न करें। जैसे कोई वमन करता है तो वह पुनः उस वमन को चाटने नहीं जाता, ऐसे ही ईश्वर-प्राप्ति में जो विघ्न डालनेवाले कर्म हैं उन्हें एक बार छोड़ दिया तो उन कर्मों को फिर दुबारा न करें।

(३) अभ्यास : भगवान के नाम-जप का, भगवान के ध्यान का, सत्संग में जो ज्ञान सुना है उसका नित्य, निरंतर अभ्यास करें।

(४) कल्याण : जो अपना कल्याण चाहता है वह औरों का कल्याण करे। निष्काम भाव से औरों की सेवा करें।

(५) भगवद्प्राप्तिजन्य क्रिया : जो कार्य तन से करें उनमें भी भगवद्प्राप्ति का भाव हो, जो विचार मन से करें उनमें भी भगवद्प्राप्ति का भाव हो और जो निश्चय बुद्धि से करें उन्हें भी भगवद्प्राप्ति के लिए करें।

(६) अनवसाद : बहुत दुःखी न हों। कोई भी दुःखद घटना घट जाय तो उसे बार-बार याद करके दुःखी न हों।

(७) अनुहर्षात् : किसी भी सुखद घटना में हर्ष से फूलें नहीं।

जो साधक इन सात उपायों को अपनाता है

वह सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

है तो सबके चित्त में अनंत ब्रह्माण्डनायक परमात्मा की सत्ता और शक्ति किन्तु बाहर का, 'मेरे-तेरे' का चिंतन करके चित्त अध्यात्मज्ञान से रहित होकर अज्ञान में भटकने लगता है और स्थूल हो जाता है। जैसे, पानी वाष्प के रूप में होता है तो उसको रोकना मुश्किल होता है लेकिन शीतगृह (Cold Storage) में रखो तो बर्फ बन जाता है, फिर उसे हटाना भी भारी पड़ता है। ऐसे ही मानव है तो सच्चिदानंदस्वरूप आत्मा लेकिन मन, बुद्धि और इन्द्रियों में, फिर धीरे-धीरे शरीर की स्थूलता में आ गया तो वह लाचार हो गया। वह अगर शरीर में रहते हुए भी चित्त को परमात्मा के चिंतन-मनन में लगाये, सात्त्विक आहार-विहार करे, जप-ध्यान करे तो मन-बुद्धि धीरे-धीरे सूक्ष्म होने लगती है और साधक परम सूक्ष्म परमात्मा को पाने में सफल हो सकता है।

...किन्तु इन सब साधनों में भी सातत्य चाहिए। ऐसा नहीं कि जप-ध्यान तो किया किन्तु जैसा-तैसा खा-पी लिया, जहाँ-तहाँ स्पर्श कर लिया, जैसा-तैसा बोल दिया। इससे साधनों के पालन से जो धारणाशक्ति बनती है वह बिखर जाती है। इसमें समय ज्यादा चला जाता है। अतः, सातत्य चाहिए। जो साधक लगातार सात दिन तक मौनमंदिर में रहते हैं, उन्हें जो लाभ होता है उसे वे जिंदगीभर याद रखते हैं क्योंकि वहाँ कोई दुःखद, भोगों में भटकानेवाला वातावरण नहीं होता अपितु सुखद परमात्मप्रेम में प्रवेश करानेवाला पावन प्रभुमय वातावरण होता है, जिससे साधक को दिव्य अनुभव होते हैं।

यह दिव्यता और आनंद आपके ही भीतर छुपा हुआ है। ज्यों-ज्यों चित्त सूक्ष्म होता जाता है, पवित्र होता जाता है, त्यों-त्यों दिव्यता उभरने लगती है, निर्मलता का एहसास होने लगता है और,

निर्मल मन जन सो मोहि पावा...

जिसका मन निर्मल है, भाव निर्मल है, कर्म निर्मल है, उद्देश्य निर्मल है वह परम निर्मलस्वरूप परमात्मा को पाने में भी सफल हो जाता है।

जगत के भोग भोगना यह मलिन उद्देश्य है और परमात्मसुख पाना यह निर्मल उद्देश्य है। जगत के 'तेरे-मेरे' के ज्ञान को दिमाग में भरना यह तुच्छ उद्देश्य है और अंतःकरण में परमात्मज्ञान को भरना यह निर्मल उद्देश्य है। जगत के भोगों की आकांक्षा करना यह मलिन उद्देश्य है और जगदीश्वर की प्राप्ति की आकांक्षा करना यह निर्मल उद्देश्य है।

जिसके जीवन में इस प्रकार का विवेक होता है वह थोड़े ही समय में परमात्मसुख, परमात्म-सामर्थ्य और परमानंद पाकर सब दुःखों और कर्मबंधनों से सदा के लिए छूट जाता है।

*

* अगर आप गुरुसेवा में रममाण रहते हैं तो आप चिन्ताओं को जीत सकते हैं। सब चिन्ताओं का यह अचूक मारण है।

* उत्तम शिष्य को अपने गुरु पर किसी भी परिस्थिति में सन्देह नहीं लाना चाहिए या उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

* कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग, हठयोग, ज्ञानयोग आदि सब योगों की नींव गुरुभक्तियोग है। जो शिष्य मानता है कि मैं सब कुछ जानता हूँ वह 'मैं'पने की भावना के कारण अपने गुरु से कुछ भी नहीं सीख सकेगा।

* शिष्य को आदरणीय आचार्य के जीवन की उज्ज्वल बातें ही देखनी चाहिए।

* जब तक गुरु में अविचल श्रद्धा न हो, तब तक किसीको भी परम सुख भोगने को नहीं मिलता।

* हमें अयोग्य लगता हो फिर भी गुरु जो करते हैं वह योग्य ही है।

* गुरु अपने शिष्य को असत् में से सत् में, मृत्यु में से अमरत्व में, अन्धकार में से प्रकाश में और भौतिकता में से आध्यात्मिकता में ले जाते हैं।

(आश्रम की पुस्तक 'गुरुभक्तियोग' से)



स्वभाव पर विजय

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

श्रीकृष्ण से उद्धवजी ने पूछा :

''बड़े-में-बड़ा पुरुषार्थ क्या है ? बड़ी उपलब्धि क्या है ? बड़ी बहादुरी किसमें है ?''

श्रीकृष्ण ने कहा : ''**स्वभावं विजयः शौर्यः...** विषयों के प्रति इन्द्रियों का आकर्षित होने का जो स्वभाव है उस पर विजय पाकर आत्मसुख में स्थित होना यह बड़ी शूरता है ।'' आँख रूप की तरफ आकर्षित करती है, जीभ चटोरेपन की तरफ, हलवाई की दुकान की तरफ ले ज़ाती है, नाक इत्र आदि सुगंधित पदार्थों की तरफ भटकाती है, कान शब्द के लिए भटकाता है तो शरीर स्पर्श के लिए, विकारी काम के लिए खींचता है ।

पाँच विषयों की तरफ भटकनेवाला यह जीव अपनी इस विकारी भटकान पर विजय पा ले - यही बड़ी बहादुरी है । रणभूमि में किसीको मात कर दिया अथवा कहीं बम-धड़ाका कर दिया... यह कोई बड़ी बात नहीं है । बड़ी बात तो यह है कि जीव अपने विकारी आकर्षणों पर विजय पाकर निर्विकारी परमात्मा के सुख को, परमात्मा की सत्ता को, अपने परमात्म- स्वभाव को जान ले ।

फिर भी मनुष्य अपने पुराने विकारी स्वभाव में भटककर अपने को लाचार बना देता है । फिर हे वाहवाही ! तू सुख दे... हे स्वाद ! तू सुख दे... हे इत्र ! तू सुख दे... करके स्वयं को खपा देता है ।

जो बिछुड़े हैं पियारे से दरबदर भटकते फिरते हैं।
हमारा यार है हममें हमन को बेकरारी क्या ?

विषय-विकारों में जीव दरबदर भटकता फिरता है । कोई विरले संत ही होते हैं जो अपने-आपमें रहते हैं (अपने स्वरूप में जगे होते हैं ।) और अपने-आपमें आये हुओं का संग ही जीव को मुक्तात्मा बना देता है । वशिष्ठजी कहते हैं : 'इस जीव में चिरकाल की वासना और इन्द्रिय-सुखों के प्रति आकर्षित होने का स्वभाव है । इसलिए अभ्यास भी चिरकाल तक करना चाहिए ।'

सारी पृथ्वी पर राज करना - यह कोई बड़ी बहादुरी का काम नहीं है । मौत के आगे तो किसीकी दाल नहीं गलती । शूरमा तो वह है जो अपने आत्म-स्वभाव को जगाता है । **स्वभावं विजयः शौर्यः...** जो अपने आत्म-स्वभाव में स्थिति करे, अपने जीवभाव पर विजय पाये, वही वास्तव में शूर है ।

जो शूरवीर होता है वह दूसरों को भी शूरवीर बनाता है और जो डरपोक होता है वह दूसरों को भी डरपोक बनाता है । 'ऐसा हो जायेगा तो ? हम मर जायेंगे तो ?...' अरे ! आप मर सकें ऐसी चीज हैं क्या ? ऐसी कौन-सी मौत है जो आपको मारेगी ? मारेगी तो शरीर को मारेगी और शरीर तो एक दिन ऐसे भी मरेगा ही । अतः, ऐसा हीन चिंतन करके डरना क्यों ?

कामविकार में गिरना, लोभ में फँसना, मोह-ममता में फँसना, अहंकार में उलझना, चिंता में चूर होना इत्यादि जीव का स्वभाव है । इन तुच्छ स्वभावों पर विजय पाकर अपने आत्म-स्वभाव को जगाना यही शूरता है ।

जिस स्वभाव से दुःख पैदा होता है, चिंता पैदा होती है, पाप पैदा होता है तथा आप ईश्वर से दूर होते जाते हैं उस स्वभाव पर विजय पायें । ईश्वर के निकट आयें, पुण्यमय हो जायें, निश्चिंत हो जायें, निर्दुःख हो जायें, आत्मा को जाननेवाला स्वभाव हो जाय - ऐसा यत्न करना चाहिए ।

अपना असली स्वभाव तो सहज में है ही, केवल अपने नीच स्वभाव पर विजय पाना है । असली स्वभाव पर विजय नहीं पाना है, नीच स्वभाव पर विजय पाना है । असली स्वभाव तो आपका अमर आत्मा है ।

आप रोग छोड़ दो तो तंदुरुस्ती आपका स्वभाव है, चिंता छोड़ दो तो निश्चितता आपका स्वभाव है, आप दुःख छोड़ दो तो सुख आपका स्वभाव है।

एक होता है नश्वर सुख, दूसरा होता है शाश्वत सुख। आप नश्वर सुख के आकर्षण पर विजय पाइये तो शाश्वत सुख को कहीं लेने जाना नहीं पड़ेगा। वह तो आपके पास है ही। जैसे, कपड़े का मैलापन गया तो स्वच्छता तो उसका स्वभाव है ही। हमने कपड़े को सफेद नहीं किया केवल उसका मैल हटाया। ऐसे ही जीवात्मा का स्वभाव है नित्यता, शाश्वतता, अमरता और मुक्ति...

जीव का स्वभाव वास्तव में शाश्वत है, नित्य है और वह परमात्मा का अविभाज्य अंग है परन्तु शरीर नश्वर है, अनित्य है और विकारों से आक्रांत है। मन में क्रोध आया, आप क्रोधी हो गये, क्रोध चला गया तो आप शांत हो गये। मन में काम आया, आप कामी हो गये, काम चला गया तो आप शांत हो गये... तो शांति आपका स्वभाव है, निश्चिंतता आपका स्वभाव है, सुख आपका स्वभाव है।

अकेला सैनिक होता है तो उसे डर लगता है। किन्तु जब सैनिक सोचता है कि मेरे पीछे सेनापति है, सेनापति सोचता है कि मेरे पीछे राष्ट्रपति है, राष्ट्रपति सोचता है कि मेरे पीछे राष्ट्र का संविधान है तो इससे सबको बल मिलता है। ऐसे ही साधक सोचे कि 'मेरे पीछे भगवान हैं, शास्त्र हैं। मेरे पीछे गुरु की कृपा है, शुभ संकल्प हैं, गुरुमंत्र है। शास्त्र का संविधान, भगवान की नियति मेरे साथ है। मैं अपने स्वभाव पर विजय पाऊँगा। मैं अवश्य आगे बढ़ूँगा।'

और आगे बढ़ने के प्रयास में एक बार नहीं, दसों बार फिसल जाओ फिर भी डरो नहीं। ग्यारहवाँ कदम फिर रखो। सौ बार गिर गये तो कोई बात नहीं, Try and try, you will be successful. स्वभाव पर विजय पाने का यत्न करो। इसके लिए प्रयत्न करते रहो, सफलता अवश्य मिलेगी। स्वभाव पर विजय पाने का दृढ़ संकल्प करो और उस संकल्प को पूरा करने का कोई-न-कोई व्रत ले लो। इससे सफलता शीघ्र मिलेगी।

कुछ लोग बोलते हैं कि 'मैं कोशिश करूँगा, मैं देखूँगा हो सकता है कि नहीं...' ऐसे विचार करना अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारने जैसा है।

शिकागो (अमेरिका) में जंगली प्याज होती थी। वहाँ बहुत बड़ा प्याज का जंगल था। 'प्याज के जंगल को हम लोग बढ़िया शहर बनायेंगे। We will do it.' वहाँ के कुछ लोगों ने ऐसा संकल्प किया और प्याज का वह जंगल समय पाकर अमेरिका का प्रसिद्ध शहर शिकागो हो गया!

ऐसे ही आप परमात्मा को पाने का इरादा पक्का करो और उस इरादे को रोज याद करो। अपना लक्ष्य सदैव ऊँचा रखो। शास्त्र और संतों के साथ कदम मिलाकर चलो अर्थात् उनके उपदेशानुसार चलो तो सफलता आपके कदम चूमेगी।

लक्ष्य न ओझल होने पाये, कदम मिलाकर चल।
सफलता तेरे चरण चूमेगी, आज नहीं तो कल॥

परमात्म-सुख पाने का ऊँचा लक्ष्य बनायें और उस लक्ष्य को बार-बार याद करते रहें। शास्त्र और संत के उपदेश के अनुसार अपना प्रयास जारी रखें तो एक दिन सफलता अवश्य मिलेगी। भगवान आपके साथ हैं, सद्गुरु की कृपा आपके साथ है। उनकी मदद कदम-कदम पर मिलती ही है। इसलिए आप उनसे दूर जाने के बजाय अपने स्वभाव पर विजय पा लें। यही शूरवीरता है। सारे विश्व में यही बड़ा बहादुरी का काम है।

संगी साथी चल गये सारे कोई न निभियो साथ।
कह नानक इह बिपत में टेक एक रघुनाथ॥

आप जगत में जिनको संगी-साथी मानते हैं वे सभी शरीर के संगी-साथी हैं और एक दिन आपको छोड़कर अलविदा हो जाते हैं किन्तु जो वास्तव में आपके संगी-साथी हैं वे ईश्वर तो आपके रोम-रोम में रम रहे हैं।

जो जीव के पाप-तापों को हर लेते हैं और उसमें अपने सच्चे स्वभाव को भर देते हैं उन परमात्मा की शरण गये बिना इस जीव का परम मंगल नहीं हो सकता, परम कल्याण उसीसे हो सकता है।

*



सत् और असत् क्या है ?

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' में श्री वशिष्ठजी महाराज कहते हैं : ''हे रामजी ! तुम इसीको विचारो कि सत् क्या है और असत् क्या है ? ऐसे विचार से सत् का आश्रय करो और असत् का त्याग करो ।''

सत् क्या है, असत् क्या है ?

सत् है - जो शाश्वत, नित्य, सुखस्वरूप, आनंदस्वरूप, ज्ञानस्वरूप है और असत् है - नश्वर और दुःखरूप, जो कि भय, चिंता, खिन्नता, राग-द्वेष और क्लेश देता है ।

असत्‌रूप शरीर को 'मैं' मानकर कुछ भी सोचा तो दुःख अवश्यंभावी है और सत् से प्रीति की तो दुःख का नाश अवश्यंभावी है ।

ऐसे उत्तम विचार से सत् का आश्रय लो और असत् का त्याग करो । सारा दिन इसकी-उसकी बातों में लगे रहे तो असत् में ज्यादा फँसते जाओगे और ज्यादा दुःखी होते जाओगे । जितना सत्‌स्वरूप परमात्मा के विषय में सुनोगे, सोचोगे, मौन रहोगे तथा सत्कर्म में लगे रहोगे उतने सुखी होते जाओगे ।

वशिष्ठजी कहते हैं : 'हे रामजी ! जो पदार्थ आदि में न हो और अंत में भी न रहे उसे मध्य में भी असत् जानिये और जो आदि-अंत में एकरस है उसे सत् जानिये ।'

यह फूलों की माला एक सप्ताह पहले नहीं थी और एक सप्ताह के बाद भी नहीं रहेगी तो अभी भी नहीं की तरफ ही जा रही है । ऐसे ही किसीने डाँट दिया या खुशामद कर दी तो कुछ समय पहले डाँट, खुशामद नहीं थी, बाद में भी नहीं रहेगी तो अभी भी नहीं की तरफ ही जा रही है । ऐसे ही सब बीत रहा है... उसे बीतने दो, गुजरने दो । उसे याद करके परेशान मत हो ।

मूर्ख मनुष्य ही बीते हुए को याद करके और भविष्य की चिंता करके परेशान होते हैं । जिससे भूत-भविष्य का चिंतन होता है उस परमात्मा को याद करके बुद्धिमान अपना वर्त्तमान सँवार लेते हैं और जिसने अपना वर्त्तमान सँवार लिया समझो, उसका भूत-भविष्य सँवरा हुआ ही है । इसके लिए सत् का आश्रय लें ।

सत् क्या है ?

जो आदि, अंत और मध्य में एकरस है वह सत् है । कल दिन में जाग्रत अवस्था थी, रात्रि हुई सो गये तो स्वप्न आया, फिर गहरी नींद आयी... खुल गयी आँख तो न स्वप्न रहा, न गहरी नींद रही । अभी न कल की जाग्रत अवस्था है, न स्वप्न अवस्था है और न ही सुषुप्तावस्था है लेकिन इन तीनों अवस्थाओं को देखनेवाला, तीनों का साक्षी अभी भी है । यही सत् है, यही ईश्वर है, यही चैतन्य है, यही ज्ञानस्वरूप है और यही आनंदस्वरूप है ।

वशिष्ठजी कहते हैं : ''हे रामजी ! जो आदि-अंत में नाशरूप है, उसमें जिसकी प्रीति है और उसके राग से जो रंजित है वह मूढ़ पशु है ।''

जिसकी प्रीति असत् से है वह मूढ़ पुरुष है । ऐसा मूढ़ पुरुष 'यह मिले तो सुखी... वह मिले तो सुखी...' ऐसा करते-करते सारी जिंदगी छटपटाता रहता है, फिर भी उसके दुःखों का अंत नहीं होता । वह दुःखी-का-दुःखी रहता है ।

इस दुःख से छूटने का एकमात्र उपाय है - सत् से प्रीति और सत्यस्वरूप परमात्मा को पाये हुए महापुरुषों का संग। जिन्होंने संतों का संग किया है, संयम-नियम का पालन किया है, भगवत्प्राप्ति के लिए हृदय को पवित्र रखा है और असत् से सावधान रहे हैं, वे मनुष्य ही असत्‌रूप संसार के दुःखों से सदा के लिए बच पाये हैं।

श्रीराम-वशिष्ठ संवाद

श्री वशिष्ठजी कहते हैं :

''हे रघुकुलभूषण श्रीराम ! अनर्थस्वरूप जितने सांसारिक पदार्थ हैं वे सब जल में तरंग के समान विविध रूप धारण करके चमत्कार उत्पन्न करते हैं अर्थात् इच्छाएँ उत्पन्न करके जीव को मोह में फँसाते हैं। परन्तु जैसे सभी तरंगें जलस्वरूप ही हैं उसी प्रकार सभी पदार्थ वस्तुतः नश्वर स्वभाववाले हैं।

समस्त शास्त्र, तपस्या, यम और नियमों का निचोड़ यही है कि इच्छामात्र दुःखदायी है और इच्छा का शमन मोक्ष है।

प्राणी के हृदय में जैसी-जैसी और जितनी-जितनी इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं उतने ही दुःखों से वह डरता रहता है। विवेक-विचार द्वारा इच्छाएँ जैसे-जैसे शांत होती जाती हैं वैसे-वैसे दुःखरूपी छूत की बीमारी मिटती जाती है। आसक्ति के कारण सांसारिक विषयों की इच्छाएँ ज्यों-ज्यों घनीभूत होती जाती हैं, त्यों-त्यों दुःखों की विषैली तरंगें बढ़ती जाती हैं। अपने पुरुषार्थ के बल से इस इच्छारूपी व्याधि का उपचार यदि नहीं किया जाये तो इस व्याधि से छूटने के लिये अन्य कोई औषधि नहीं है।

एक साथ सभी इच्छाओं का सम्पूर्ण त्याग न हो सके तो थोड़ी-थोड़ी इच्छाओं का धीरे-धीरे त्याग करना चाहिए परंतु रहना चाहिए इच्छा के त्याग में रत, क्योंकि सन्मार्ग का पथिक दुःखी नहीं होता।

इच्छा के शमन से परम पद की प्राप्ति होती है। इच्छारहित हो जाना यही निर्वाण है।

(श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण)



त्याग और पवित्रता

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से

त्याग और पवित्रता - ये भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक खजाने की दो अनुपम कुंजियाँ हैं

जीवन में त्याग होना चाहिए। आप कोई का करते हैं और उसमें आपकी स्वार्थ बुद्धि होती है बुद्धि कुंठित हो जाती है और आपकी योग्यता क हो जाती है। अगर स्वार्थरहित काम करते हैं थोड़ी-सी योग्यतावाले की योग्यता भी बहुत निख जाती है।

दूसरी कुंजी है पवित्रता। खानपान में, आहार विहार में, वाणी में और कर्म में पवित्रता हो चाहिए। कोई व्यक्ति हमसे प्रभावित हो जाय अथ हमें उससे कुछ मिल जाय इस प्रकार की लाल होने से भी अपना कर्म नन्हा हो जाता है, तुच्छ जाता है। चाहे कोई संसार में हो अथवा ईश्वर मार्ग पर हो... उसके जीवन में जितनी ईमानदा होगी उतना ही जीवन सहज होता जायेगा, साध सहज होती जायेगी।

त्याग और पवित्रता से अंतःकरण शुद्ध हो है और शुद्ध अंतःकरण में ज्ञान शीघ्र फलित हो है। शुद्ध अंतःकरणवाले का सहज साधन होता अर्थात् उसे साधना करनी नहीं पड़ती बल्कि उस साधना होने लगती है।

स्वाभाविक साधन में दो बातें हैं। एक तो कि इसमें गलती नहीं होती और दूसरी यह थकान भी नहीं होती। शरीर में कभी थकान हो भी है लेकिन मन प्रसन्न रहता है जिससे थका

का प्रभाव नहीं पड़ता है।

सहज साधन में सहज विश्राम है। सहज विश्राम में सब सहज हो जाता है। कबीरजी ने कहा है :

सहजो सहजो सब कहे, सहजो जाने न कोई।
इन्द्रिय आकर्षण विषय तजे, सो ही सहजो होई॥

जगत का आकर्षण, बाहर से सुखी होने का आकर्षण मिटाने के लिए साधन की आवश्यकता है। अतः, सुख लेने की जगह सुख दें, मान लेने की जगह मान दें। इससे हृदय शुद्ध होगा, साधन सहज में होगा।

सहज साधन क्या है ?

उचित श्रम और उचित विश्राम।

उचित श्रम क्या है ?

आलस्य न हो। मैं थका हूँ, थका हूँ... ऐसा कहकर व्यर्थ की थकान न बने और उचित विश्राम क्या है ? अति परिश्रम करके शरीर को श्रमित न बनायें। जब आराम की आवश्यकता हो तब शरीर को आराम दें ताकि फिर ध्यान-भजन में बैठने के काबिल बन जाय।

सुबह तो रातभर का आराम किया हुआ रहता है, अतः सूर्योदय से पहले नहा-धोकर बैठ जायें और भगवन्नाम सहित श्वासोच्छ्वास की गिनती करें। इससे मन की चंचलता मिटती है। प्रभात के समय में मन शांत और दिव्य भावों से जल्दी भरता है। कोई अगर सुबह दो घंटे यह साधन करे तो छः महीने में इतनी ऊँचाई पर पहुँच सकता है जहाँ सामान्यतया आठ साल में नहीं पहुँच सकता।

साधना में शीघ्र उन्नति के चार सोपान हैं :

पहला है **विश्रांति**, दूसरा है **सजगता**, तीसरा है **भगवान की शरण** और चौथा है **कुछ भी नहीं करना**। छः महीने के अंदर चौथे में पहुँच गये तो समझो, पूरा काम बन गया, लेकिन शर्त यह है कि विवेक, वैराग्य एवं तत्परता से चलना पड़ेगा। उस ईश्वर के होकर चलना पड़ेगा और उसकी कृपा होगी तब काम बनेगा।

परमात्मा कृपा कब करेंगे ?

जब आप कृपा के लायक बनते जायेंगे तो कृपा मिलती जायेगी। सूर्य का प्रकाश तो मिलता ही रहता है लेकिन किसान बीज बोये तभी सूर्य की कृपा को पा सकता है। ऐसे ही आप परमात्मा के लिए त्यागमय एवं पवित्र जीवन बितायें तो उसकी कृपा तो राह देख ही रही है।

जीवन में पवित्रता और त्याग जितना ईमानदारीपूर्वक होगा उतना ही आप परमात्मा की शरण जा पाओगे तथा जितनी शरणागति होगी मन-बुद्धि उतनी ही विश्रांति पा सकेंगे, उतने ही आप विकारों से सजग रह सकेंगे, उतने ही विलक्षण अनुभव कर पायेंगे और उतने ही परमात्मा में रहकर दिव्य अनुभव पाते जायेंगे।



'तीन तनावों में पिसा जा रहा है सारा संसार...'

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

सारा संसार तीन तनावों में तना जा रहा है : शारीरिक तनाव, मानसिक तनाव और भावनात्मक तनाव।

इन तीनों तनावों की भीषण चक्की में देश-विदेश के सभी मनुष्य पिसे जा रहे हैं। आत्महत्या के कारणों की जाँच करनेवाले एक अध्ययन के अनुसार ९८% आत्महत्याएँ मानसिक एवं भावनात्मक तनावों के कारण ही होती हैं। लाख आत्महत्याओं में ९८,००० का कारण मानसिक एवं भावनात्मक तनाव है। सारे सुख-सुविधाएँ होते हुए भी इन तनावों के कारण बेचारे लोग आत्महत्या करके मर जाते हैं।

इसी प्रकार ९५% हृदयाघात भी मानसिक तनाव के शिकार लोगों को ही होता है। कई लोगों को खानपान का उचित विवेक नहीं होता है इस कारण भी वे हृदयाघात के शिकार बन जाते हैं।

'सुख-दुःख में सम रहना, सदैव प्रसन्न रहना ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति है।' गीता का यह ज्ञान, इस प्रकार का सत्संग जिन्होंने पाया है ऐसे लोग इन तनावों से नहीं तनते। उन्होंने ही जीवन जीने का सही ढंग सीखा है।

ऐसा ज्ञान पानेवाला साधक इन तनावों का शिकार होने से काफी हद तक बच जाता है, क्योंकि वह न तो अति परिश्रम करेगा और न ही अति आराम करेगा। साधक परिश्रम भी करेगा तो उसे कठिन नहीं लगेगा, क्योंकि वह ऐसा नहीं मानेगा 'मैं परिश्रम कर रहा हूँ' वरन् वह तो मानेगा 'परिश्रम शरीर कर रहा है।' ऐसा समझकर वह शारीरिक तनाव से बचता चला जायेगा और मानसिक तथा भावनात्मक तनाव से बचने की विधि भी वह सत्संग के द्वारा जान लेता है।

मेरो चिंत्यो होत नाहीं हरि को चिंत्यो होय।
हरि को चिंत्यो हरि करे मैं रहूँ निश्चिंत।
तुलसी भरोसे राम के निश्चिंत होई सोय।
अनहोनी होती नहीं होनी होय सो होय।

सब अपना-अपना प्रारब्ध लेकर आते हैं फिर भी मनुष्य को अपना पुरुषार्थ करना चाहिए और पुरुषार्थ तो करे लेकिन उसका फल पाने की इच्छा न रखे बल्कि 'भगवान ! तेरी मर्जी पूरण हो... मेरी इच्छा, वासना, कामना जल जाय और तेरी इच्छा पूरी हो जाय।' इस भाव से प्रयत्न करे। सद्गुरु के इस प्रकार के वचन सुनकर एवं उसका अभ्यास करके विवेक, वैराग्यसंपन्न सुदृढ़ सत्संगी मानसिक तनावों से इतने नहीं पीड़ित होते हैं जितने कि निगुरे पीड़ित हो जाते हैं।

क्योंकि निगुरे आदमी को तो गुरु के वचन सुनने को ही नहीं मिलते। कभी पुण्यवश संत-महापुरुष के वचन सुनने को मिल भी जायें तो वह उन्हें सुनता तो है लेकिन उस पर विचार नहीं कर पाता है, उन वचनों को स्वीकार नहीं कर पाता है। उसे लगता है 'यह तो करना चाहिए, वह तो करना चाहिए...' तो करो और मरो, कर्त्ता होकर पचते रहो तनावों में।

'मैं कुछ बनकर दिखाऊँ, कुछ करके दिखाऊँ...' का जो भूत है वह निगुरे लोगों को मानसिक और भावनात्मक तनाव में ताने रखता है। अरे, बनकर क्या देखना है ? तू मिट जा भैया ! बनेगा तो अहंकारी हो जायेगा। तू बनने की कोशिश न कर, मिटने का यत्न कर।

जो तिद् भावे सो भलिकार...

फिर भी कुछ बनने का शौक है तो भगवान का बनकर देख, सद्गुरु का बनकर देख।

संसार में थोड़े-बहुत सफल हो गये तो अहंकार मार गिराता है और विफल हो गये तो विषाद

दबोच लेता है। इसलिए 'मैं कुछ होकर दिखाऊँ, कुछ बनकर दिखाऊँ, कुछ प्रसिद्ध होकर दिखाऊँ...' ऐसी कामना सत्‌शिष्य को नहीं होती।

कुछ बनकर नहीं दिखाना है वरन् यह जो कुछ बनकर दिखाने का भूत है उसको हटाओ। फिर देखो, वह घड़वैया तुम्हें कैसे घड़ता है! हमने कभी नहीं सोचा, 'मैं आसुमल हूँ, आसाराम बनकर दिखाऊँ... प्रसिद्ध होकर दिखाऊँ...' नहीं नहीं। **मेरी हो सो जल जाय तेरी हो सो रह जाय...**

कुम्हार के हाथ में मिट्टी को जाने दो फिर वह घड़ा बनाये, सुराही बनाये, कुल्हड़ बनाये उसकी मर्जी... संसार का कुम्हार तो बनाता है अपने स्वार्थ के लिए लेकिन परमात्मा और सद्‌गुरुरूपी कुम्हार अपने स्वार्थ के लिए नहीं बनायेंगे वरन् तुम्हें ही परमेश्वरमय बना देंगे।

यदि तू अपनी अकड़-पकड़ छोड़ दे, अपनी वासना छोड़ दे और अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए चिंतन करना छोड़ दे तो बहुतों की भलाई के लिए ईश्वर तेरे द्वारा बहुत कुछ करवाने को तैयार है। अगर तू कुछ बनने की कोशिश करेगा तो मानसिक तनाव में, भावनात्मक तनाव में और अहंकार में ही तनता रहेगा। इसी प्रकार भावनात्मक तनाव भी लोगों को पीड़ित कर रहा है।

एक आदमी बीच सड़क से जा रहा था। उससे पूछा गया : ''भाई! तुम बीच सड़क पर क्यों चल रहे हो?''

आदमी बोला : ''एक बार कोई आदमी सड़क के किनारे से जा रहा था और किनारे के किसी मकान की दीवार गिर गयी तो उससे वह आदमी दब गया था। अब मुझे भी डर लगता है कि कहीं किनारेवाली दीवार गिर जायेगी तो मैं भी दबकर मर जाऊँगा। इसीलिए बीच सड़क पर चलता हूँ।''

ऐसे ही किसीको आठ साल की एक बेटी है और दूसरी संतति भी बेटी ही हुई तो माँ को चिंता लग गयी कि इसके लिए दहेज देना पड़ेगा...। दहेज तो देना पड़ेगा १८-२० साल के बाद लेकिन तनाव अभी से घुस गया... और १८-२० साल के बाद तो परिस्थितियाँ भी बदल जायेंगी। अभी कन्याएँ कम हो रही हैं और लड़के ज्यादा। इन आँकड़ों के हिसाब से आनेवाला समय इससे कुछ दूसरा ही होगा। अभी बेचारे कन्यावाले गिड़गिड़ाते हैं, तब लड़केवाले आजी-निजारी, मन्नते करते, कन्या माँगते रहेंगे जो कि सन् १९४७ के पूर्व की स्थिति थी। लड़कों की इतनी कीमत नहीं रहेगी, लड़की मिले तो कृपा हो गयी ऐसा होनेवाला है।

लड़की दस साल की हो गयी... तब भी चिंता हो रही है कि इसकी शादी करनी पड़ेगी। लड़की १८ वर्ष की हो गयी... २० की हो गयी... सगाई नहीं हो रही है तब भी चिंता हो रही है, भावनात्मक तनाव की लकीरें दिन-प्रतिदिन खिंचती चली जाती हैं। अरे! जो होना होगा सो होगा। तुम प्रयत्न करो, कार्य में ध्यान रखो लेकिन चिंता मत करो।

शारीरिक रूप से स्वस्थ रहने के लिए खूब आविष्कार हो रहे हैं परन्तु व्यक्ति अगर तीन-चार घंटे भी नींद कर ले तो आराम से स्वस्थ रह सकता है, परन्तु खानपान और आहार-विहार की गड़बड़ी करता है तो ७-८ घंटे सोने पर भी अपने को थका हुआ महसूस करता है। फिर थोड़ा काम करता है तो 'मैंने बहुत काम कर लिया और मैं बहुत थक गया हूँ... मैं बीमार हूँ और मैं कुछ नहीं कर सकता हूँ...' ऐसे बेकार के चिंतनों में पड़कर शारीरिक तनाव से पीड़ित हो जाता है।

शारीरिक और मानसिक तनाव बढ़ने से फिर उस आदमी को सिगरेट की, दारू की जरूरत पड़ने लगती है। पति अथवा पत्नी के साथ अपना सत्यानाश करने की इच्छा - यह शारीरिक और मानसिक तनाव का फल है। बिनजरूरी कामविकार, बिनजरूरी खाना, बिनजरूरी बोलना - ये भी शारीरिक और मानसिक तनाव के लक्षण हैं।

मनुष्य अगर इसी ढंग से जीवन जीता रहे तो उसके पास मौत की चार चिट्ठियाँ आ जाती हैं : शरीर पर झुर्रियाँ, बालों की सफेदी, आँखों की रोशनी में कमी और नसों की कमजोरी।

अगर कोई इन मुसीबतों से बचना चाहता है तो उसे चाहिए कि आसन-प्राणायाम के द्वारा शरीर को स्वस्थ रखे, श्वासोच्छ्‌वास की गिनती करे और 'मैं

शरीर नहीं हूँ तो रोग मुझे कैसे छू सकता है ?' ऐसा सोचे, संतों के सत्संग का लाभ ले तो वह शारीरिक और मानसिक तनावों से मुक्ति पा लेगा।

अपने जीवन में तीन बातों का ध्यान रखो :

(१) शरीर को अति थकाओ मत।

(२) मैं थक गया हूँ - ऐसा सोचकर मन से भी मत थको। मन को तनाव में न डालो। जो होगा, देखा जायेगा।

(३) भावनाओं एवं कल्पनाओं में मत उलझो।

सारा संसार इन्हीं तीन तनावों में तप रहा है - शारीरिक तनाव, मानसिक तनाव और भावनात्मक तनाव। कोई भगत है, मंदिर में भी जाता है फिर भी यदि उसके जीवन में सत्संग नहीं है, संत पुरुषों का मार्गदर्शन नहीं है तो वह भी भावनात्मक तनाव से तन जाता है। कुछ अच्छा हो गया तो खुश हो जायेगा कि 'भगवान की बड़ी कृपा है' और कुछ बुरा हो गया तो कहेगा : 'भगवान ने ऐसा नहीं किया, वैसा नहीं किया।' लेकिन उसे क्या पता कि भगवान उसका कितना हित चाहते हैं ? इसलिए कभी भी अपने को दुःखद चिंतन में नहीं गिराना चाहिए, निराशा की खाई में नहीं गिराना चाहिए और न ही अहंकार केदलदल में फँसाना चाहिए वरन् यह विचार करें कि संसार सपना है इसमें ऐसा तो होता रहता है...

इन तीनों तनावों से छुटकारा पाने का एक ही उपाय है, बाकी के सब उपाय तो तनावरूपी वृक्ष के पत्ते और टहनियाँ तोड़ने के समान हैं। तनावरूपी वृक्ष की जड़ में कुल्हाड़ी मारना हो तो एक ही कुल्हाड़ी है - वह है आत्मयोग की।

आत्मयोग क्या है ?

जो दिख रहा है वह सब स्वप्न है, स्फुरणामात्र है और जिससे दिख रहा है वह आत्मा ही सत्य है। उस सत्य में विश्रांति पाने का नाम ही है - आत्मयोग। इससे तीनों तनाव अपने-आप दूर हो जाते हैं।

सब लोग इन तीन तनावों में से किसी-न-किसी तनाव से कम या अधिक अंशों में पीड़ित हैं। कोई एक से तो कोई दो से अथवा कोई-कोई तो तीनों तनावों से पीड़ित हैं। इन तीनों तनावों से पार हुआ, अपने परमेश्वर-स्वभाव में, अपने आत्मस्वभाव में जगा हुआ तो कोई विरला महापुरुष ही मिलता है।

ऐसे आत्मवेत्ता महापुरुष इन तीन तनावों से पार होने की कुंजी बताते हैं, प्रयोग बताते हैं और परमात्म-प्रसन्नता की प्राप्ति भी करा देते हैं। धनभागी हैं वे लोग जो उनके पदचिह्नों पर सच्चाई एवं श्रद्धापूर्वक चलते हैं।

कानूनी संध्या

एक चुस्त कर्मकाण्डी धार्मिक राजा ने आदेश जारी किया : 'प्रत्येक ब्राह्मण को त्रिकाल संध्या करना अनिवार्य है। जो ब्राह्मण इसका उल्लंघन करेगा उसे राज्य से बाहर निकाल दिया जायेगा।'

एक बार राजा सुबह-सुबह सैर करने को निकले थे। उसी समय एक बूढ़ा ब्राह्मण लोटा लेकर दिशा-मैदान के लिए जा रहा था। उसने देखा कि राजासाहब आ रहे हैं तो वह लोटा लेकर बैठ गया और अपने ऊपर जल छिड़कते हुए बोलने लगा :

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थांगतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

राजा बुद्धिमान था। वह सोचने लगा कि अभी-अभी तो ब्राह्मण का जनेऊ कान पर था, दिशा-मैदान के लिए जा रहा था और अब संध्या करने लगा ! राजा ने पूछा : ''ब्राह्मण देव ! आप यह क्या कर रहे हैं ?''

ब्राह्मण बोला : ''राजन् ! पूछते हो तो बता देता हूँ कि आज मैं जरा देर-से उठा था और कानून है कि जो सूर्योदय के समय संध्या नहीं करेगा उसे सजा मिलेगी। अतः, अभी तो मैं कानूनी संध्या कर रहा हूँ। फिर नहा-धोकर अपनी संध्या करूँगा।''

कानून बनाने से कोई धार्मिक नहीं होता और यदि धार्मिक होता हुआ दिखे तो समझ लेना कि कानूनी धार्मिक है, भीतर से धार्मिक नहीं है। वह यदि भीतर से समझ आ जाती है तो उसके लिए कानून की आवश्यकता नहीं रहती।



✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

सदैव सावधान रहें

एक गृहस्थ ने किसी सद्गुरु के सत्शिष्य से अनुनय-विनय करते हुए कहा : ''दरिया में तूफान चल पड़ा है। मेरा जहाज अब डूबा-तब डूबा। इस स्थिति में मेरा तो सर्वनाश हो जायेगा। इस संकट-वेला में गुरुजी से प्रार्थना कीजिये कि जहाज बचाने की कृपा करें।''

शिष्य ने कहा : ''इतनी-सी बात जाकर मैं गुरुजी से बोलूँ ? मैं गुरुजी के ध्यान में विघ्न डालने का पाप नहीं करूँगा। जहाज डूब रहा है तो प्रार्थना कीजिये कि 'हे राम ! मेरे डूबते हुए जहाज की रक्षा करें।' सर्वेश्वर, सर्वव्यापक राम कृपा करेंगे।''

शिष्य ने ऐसा कहकर उन्हें प्रसाद में तुलसी के पत्ते दे दिये। शिष्य की गुरु में आस्था थी और जाने-अनजाने वह अन्तरात्मा की शरण में एकाकार हो गया होगा। सेठ ने शिष्य के कहे अनुसार किया तो चमत्कार हो गया। सेठ का जहाज डूबने से बच गया।

सेठ दक्षिणा लेकर आया और शिष्य से बोला : ''गुरु तो गुरु हैं लेकिन आप भी कम नहीं हैं। मेरा जहाज डूबने से बच गया। आपकी बड़ी कृपा हो गयी।''

इस बात का पता गुरु को चला। गुरु ने शिष्य को कहा : ''बेटा ! अब तो तेरे पास सिद्धियाँ आ गयी हैं। तू चाहे तो अपने ढंग से जी सकता है।''

शिष्य समझ गया कि मुझसे बड़ी भारी गलती हो गयी है। वह गुरुचरणों में गिर पड़ा और उनसे क्षमा माँगी।

जब तक पूर्ण ज्ञान न हो जाय तब तक ऋद्धियों-सिद्धियों के चक्कर में साधक को कदापि नहीं पड़ना चाहिए। वास्तव में होता तो है सब ईश्वरकृपा से, सद्गुरुकृपा से, लेकिन 'मेरे द्वारा हुआ' ऐसा मानकर साधक बेचारा अहंकार एवं खुशामतखोरों के चक्कर में फँस जाता है। जब तक पूर्ण ज्ञान न हो जाय तब तक साधक को कदम-कदम पर सावधान रहना चाहिए।

✻

श्रद्धायुक्त दान का फल

एक सेठ था। वह खूब दान-पुण्य इत्यादि करता था। प्रतिदिन जब तक सवा मन अन्नदान न कर लेता तब तक वह अन्न-जल ग्रहण नहीं करता था। उसका यह नियम काफी समय से चला आ रहा था।

उस सेठ के लड़के का विवाह हुआ। जो लड़की उसकी बहू बनकर आई, वह सत्संगी थी। वह अपने ससुरजी को दान करते हुए देखती तो मन-ही-मन सोचा करती : 'ससुरजी दान तो करते हैं, अच्छी बात है, लेकिन बिना श्रद्धा और बिना भाव के दान करते हैं। बिना श्रद्धा के किया हुआ दान कोई विशेष प्रभाव नहीं रखता।'

दान का फल तो अवश्य मिलता है किन्तु अच्छा फल प्राप्त करना हो तो प्रेम से व्यवहार करते हुए श्रद्धा से दान देना चाहिए।

वह सत्संगी बहू शुद्ध हाथों से मुट्ठीभर अनाज साफ करती, पीसती और उसकी रोटी बनाती। फिर कोई दरिद्रनारायण मिलता तो उसे बड़े प्रेम से, भगवद्भाव से भोजन कराती। ऐसा उसने नियम ले लिया था।

समय पाकर उस सेठ की मृत्यु हो गयी और कुछ समय बाद बहूरानी भी स्वर्ग सिधार गयी।

कुछ समय पश्चात् एक राजा के यहाँ उस लड़की (सेठ की बहू) का जन्म हुआ और वह राजकन्या बनी। वह सेठ भी उसी राजा का हाथी बनकर आया।

जब वह राजकन्या युवती हुई तो राजा ने

योग्य राजकुमार के साथ उसका विवाह कर दिया। पहले के जमाने में राजा लोग अपनी कन्या को दान में अशर्फियाँ, घोड़े, हाथी इत्यादि दिया करते थे। राजा ने राजकन्या को वही हाथी, जो पूर्वजन्म में उसका ससुर था, दान में दिया। राजकन्या को उसी हाथी पर बैठकर अपनी ससुराल में जाना था। जैसे ही वह उस हाथी पर बैठने लगी और हाथी ने उसे देखा तो दैवयोग से हाथी को पूर्वजन्म की स्मृति जग गयी। उसे स्मरण हुआ कि 'यह तो पूर्वजन्म में मेरी बहू थी ! मेरी बहू होकर आज यह मेरे ऊपर बैठेगी ?'

हाथी ने सूँड और सिर हिलाना शुरू कर दिया कि 'चाहे कुछ भी हो जाय मैं इसे बैठने नहीं दूँगा।'

राजकन्या ने सोचा कि 'यह हाथी ऐसा क्यों कर रहा है ?' शरीर और मन तो बदलते रहते हैं परन्तु जीव तो वही-का-वही रहता है। जीव में पूर्वजन्म के संस्कार थे, संत पुरुषों का संग किया था, इसलिए राजकन्या जब थोड़ी शांत हुई तो उसे भी अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आया।

वह बोली : ''ओहो ! ये तो ससुरजी हैं... ससुरजी ! आप तो खूब दान करते थे। प्रतिदिन सवा मन अन्नदान करने का आपका नियम था, लेकिन श्रद्धा से दान नहीं करते थे तो सवा मन प्रतिदिन खाने को मिल जाय, ऐसा हाथी का शरीर आपको मिल गया है। आप सबको जानवरों की तरह समझकर तिरस्कृत करते थे, पशुवृत्ति रखते थे। सवा मन देते थे तो अब सवा मन ही मिल रहा है।

मैं देती तो थी मात्र पावभर और पावभर ही मुझे मिल रहा है लेकिन प्रेम और आदर से देती थी तो आज प्रेम और आदर ही मिल रहा है।''

यह सुनकर हाथी ने उस राजकन्या के चरणों में सिर झुकाया और मनुष्य की भाषा में बोला :

''मैं तेरे आगे हार गया। आ जा... तेरे चरण मेरे सिर-आँखों पर, मेरे ऊपर बैठ और जहाँ चाहे वहाँ ले चल।''

प्रकृति को हम जैसा देते हैं, वैसा ही ह[म] वापस मिल जाता है। आप जो भी दो, जिसे भ[ी] दो, भगवद्भाव से, प्रेम से और श्रद्धा से दो। ह[र] कार्य को ईश्वर का कार्य समझकर प्रेम से करो सबमें परमेश्वर के दर्शन करो तो आपका हर का[र्य] भगवान का भजन हो जायेगा और फल यह होग[ा] कि आपको अंतर-आराम, अंतर-सुख परमात्म-प्रसाद पाने की रुचि बढ़ जायेगी औ[र] उनको पाना आसान हो जायेगा।

*

* आप ज्यों-ही इच्छा से ऊपर उठते हो, त्यों-ही आपका इच्छित पदार्थ आपको खोजने लगता है। अतः पदार्थ से ऊपर उठो। यही नियम है। ज्यों-ज्यों आप इच्छुक, भिक्षुक, याचक का भाव धारण करते हो, त्यों-त्यों आप ठुकराये जाते हो।

* समस्त भय एवं चिन्ताएँ आपकी इच्छाओं के परिणाम हैं। आपको भय क्यों लगता है ? क्योंकि आपको आशंका रहती है कि अमुक चीज कहीं चली न जाय। लोगों के हास्य से आप डरते हैं क्योंकि आपको यश की अभिलाषा है, कीर्ति में आसक्ति है। इच्छाओं को तिलांजलि दे दो। फिर देखो मजा ! कोई जिम्मेदारी नहीं... कोई भय नहीं।

(आश्रम की पुस्तक 'जीवन रसायन' से)

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।



सत्संग की महिमा

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग प्रवचन से ❊

स्वाध्यायान्मा प्रमदः ।

स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिए ।

स्वाध्याय के तीन प्रकार हैं : १. कर्मकाण्डपरक स्वाध्याय २. उपासनाकाण्डपरक स्वाध्याय ३. ज्ञानकाण्डपरक स्वाध्याय ।

वेदों में कुल १,००,००० मंत्र हैं । उनमें से ८०,००० मंत्र कर्मकाण्ड के हैं, १६,००० मंत्र उपासनाकाण्ड के हैं और ४,००० मंत्र ज्ञानकाण्ड के हैं । जितने विद्यार्थी बालमंदिर और माध्यमिक विद्यालय में होते हैं उतने कॉलेज में नहीं होते । ऐसे ही कर्म और उपासना के जितने अधिकारी होते हैं उतने ज्ञान के नहीं होते । फिर कॉलेज के विषयों को वही समझ सकता है जो बालमंदिर और माध्यमिक विद्यालय में पढ़कर आया हो लेकिन आध्यात्मिक जगत में एक अच्छी सुविधा यह है कि यदि आपने कर्मकाण्ड एवं उपासना नहीं की हो, फिर भी आप वेदान्त का बार-बार श्रवण करते हैं तो कर्मकाण्ड का काम पूरा हो जाता है ।

जैसे, आप शहद बनाने की मेहनत नहीं करते, मधुमक्खी तमाम फूलों के रस को एकत्रित करके शहद तैयार कर देती है, ऐसे ही शास्त्र और संतरूपी भ्रमर सत्संग के द्वारा आपका विवेक-वैराग्य जगा देते हैं । ८०,००० वेदमंत्र जो कि कर्मकाण्डपरक हैं उनका काम बार-बार सत्संग-श्रवण से पूरा हो जाता है । यही कारण है कि सत्संग में लोगों की गढ़ाई हो जाती है, लोगों का जीवन बदल जाता है और अध्यात्म मार्ग के पथिक तैयार हो जाते हैं ।

केवल कर्मकाण्ड करते-करते तो कइयों का जीवन कर्मकाण्ड के दायरे में ही पूरा हो जाता है क्योंकि उसका दायरा लंबा है । एक ओर तो शुभ कर्म करते हैं किन्तु दूसरी ओर अशुभ कर्म भी हो जाते हैं, जिससे हिसाब बराबर हो जाता है । वेदान्त के बार-बार श्रवण करने से समझ और विचार सतत बने रहते हैं उसी तरह कर्म सतत नहीं हो पाते ।

सत्संग सुनने से सत्संगी की सूझबूझ, विवेक और सावधानी बढ़ जाती है । सुने हुए सत्संग का असर होता ही है, फिर चाहे आप इन्कार कर दो । नकारात्मक दृष्टिकोण से भी उसका चिंतन होता है और सकारात्मक दृष्टिकोण से भी चिंतन होता है । वेदान्त का श्रवण करने से कर्मकाण्ड का काम पूरा हो जाता है । उसका मनन करने से उपासनाकाण्ड के १६,००० मंत्रों का काम पूरा हो जाता है । जब मनन परिपक्व होता है तब निदिध्यासन होने लगता है । फिर आपको मनन करना नहीं पड़ता, वरन् आपकी समझ 'उसीमय' हो जाती है । जब समझ 'उसीमय' हो जाती है तो 'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' का निर्वाण प्रकरण, 'श्रीमद्भगवद्गीता' का स्थितप्रज्ञवाला प्रकरण, 'रामायण' का आध्यात्मिकतावाला प्रकरण एवं वेदों का उपनिषद् भाग शेष कार्य पूर्ण कर देते हैं ।

एक रास्ता यह है कि आप बैलगाड़ी द्वारा यहाँ (अमदावाद) से दिल्ली जाओ । दूसरा रास्ता यह है कि दिल्ली मेल (तेज गतिवाली ट्रेन) से दिल्ली जाओ । तीसरा रास्ता यह है कि आप हवाई जहाज से दिल्ली जाओ । दिल्ली सब जा रहे हैं लेकिन वहाँ पहुँचने में समय का फर्क है । ऐसे ही श्रवण-मनन और निदिध्यासन हवाई जहाज की यात्रा के समान हैं जो परमात्म-प्राप्ति के लक्ष्य तक जल्दी पहुँचा देते हैं ।

परमात्मज्ञान साक्षात् अपरोक्ष ज्ञान है ।

ज्ञान तीन प्रकार का होता है :

१. प्रत्यक्ष २. परोक्ष ३. साक्षात् अपरोक्ष ।

अमेरिका हमारे लिए परोक्ष है, किन्तु वहाँ जाकर उसे देख लें तो वह प्रत्यक्ष हो गया। इस प्रकार जगत की चीजें प्रत्यक्ष और परोक्ष होती हैं परन्तु अपना-आपा साक्षात् अपरोक्ष है। जगत की चीजें मिलती और बिछुड़ती रहती हैं परन्तु अपना-आपा कभी बिछुड़ता ही नहीं, सदा मिला मिलाया है। अपना-आपा तो सदा मौजूद है साक्षात् अपरोक्ष है फिर भी अज्ञान के आवरण से ढँका रहता है। परदा हटता है तो मिला-सा लगता है जबकि वह हमसे कभी अलग था ही नहीं।

जो चीज अप्राप्त होती है और फिर मिलती है, तो उसकी उपलब्धि मानी जाती है। जो चीज प्राप्त है फिर भी वह न दिखकर कुछ और होकर दिखती है तो उसकी भ्रांति मानी जाती है।

एक महिला आटा पीस रही थी। आटा पीसते-पीसते उसके गले का हार पीठ की ओर चला गया जिसका उसे पता न चला। आटा पीसने के बाद वह अपना हार ढूँढ़ने लगी। उसने अपनी तिजोरी और थैलियाँ तलाशीं किन्तु हार न मिला। इतने में एक समझदार वृद्धा आयी, जिसे महिला ने यह बात बताई। उस वृद्धा ने देखा कि हार तो इसके गले में ही पड़ा हुआ है परन्तु उसका लॉकेट पीछे चला गया है। वृद्धा ने हार को आगे करके कहा : ''यह रहा तेरा हार !''

वृद्धा हार कहीं से लायी नहीं थी क्योंकि हार कहीं गया ही नहीं था, केवल खो जाने की भ्रांति हो गयी थी। वृद्धा ने जब दिखाया तो प्राप्त हार की ही प्राप्ति हुई, अप्राप्त हार की नहीं। प्राप्त चीज कहीं चली जाय और फिर मिले तो 'प्राप्ति' कहलाती है और कोई चीज अपने पास नहीं हो, फिर मिले तो 'उपलब्धि' कहलाती है।

वेदान्त दर्शन में ईश्वर की प्राप्ति नहीं मानी गयी है। ईश्वर किसीको प्राप्त नहीं होता, ब्रह्म किसीको प्राप्त नहीं होता, बल्कि प्राप्त जैसा लगता है। वह भी किसको ? जिसको नहीं मिला उसको लगता है कि फलाने को मिला, किन्तु जिसको परमात्म-अनुभव हो गया है उसको नहीं लगता कि उसे कुछ मिला है।

पाया कहे सो बावरा खोया कहे सो कूर।

लोग कहते हैं नानक को मिला है लेकिन कहता है 'पा लिया' वह नानकजी के मत में बाव (पागल) है और जो कहता है 'खो गया' झूठा (कूर) है।

पाया कहे सो बावरा खोया कहे सो कूर
पाया-खोया कुछ नहीं नित एकरस भरपूर

परमात्मा को पानेवाले को पता नहीं चल कि मैंने पा लिया है। कोई पूछता है : 'महाराज पानेवाले को भी पता नहीं चलता ?' जिसने ठी से परमात्मा को पाया है वह ऐसा नहीं कहेगा मैंने पाया है। पाया किसे जाता है ? जो बिछु हो। किन्तु कोई अपने-आपसे कैसे बिछुड़ सक है ? इसीलिए ऐसा नहीं कहा जाता है कि 'पा लिय क्योंकि परमात्मा सदा प्राप्त है।

जिन महापुरुषों ने परमात्मा का अनुभव क लिया है उनके सान्निध्य में आकर श्रवण-मनन निदिध्यासन करें और उसीमें स्थिति कर लें हमें भी परमात्मा का अनुभव हो सकता है। ...अ यह कार्य कठिन नहीं है परन्तु विजातीय संस्का को हटाना कठिन लगता है।

विजातीय संस्कारों को कैसे हटायें ?

एक तरीका तो यह है कि जैसे एक लोटे पानी भरा है और उसमें आप दूध भरना चाहते लेकिन पानी निकालना नहीं चाहते हो तो उस दूध भरते जाओ। प्रारंभ में दूध व पानी दोनों बहे लेकिन एक समय ऐसा आयेगा कि उसमें कव दूध का ही प्रमाण रह जायेगा। अर्थात् महापुरु के पास आते-जाते रहो। जप-ध्यान-सत्संग कीर्तन आदि करते रहो। धीरे-धीरे विजाती संस्कार निकलते जायेंगे एवं परमात्म-प्राप्ति प्रति रुचि बढ़ती जायेगी।

दूसरा तरीका है कि लोटा पूरा खाली कर और उसमें दूध भर दो अर्थात् वैराग्य जाग जा और आप मकान-दुकान, पुत्र-परिवार सब छोड़ छाड़कर पहुँच जाओ किन्हीं ब्रह्मवेत्ता महापुरुष पास। अपने सारे-के-सारे विजातीय संस्कारों क आप उलटे कर दो अर्थात् जगत के संस्कार धु

जायें और फिर महापुरुषों के ज्ञान-संस्कार को अपने में भरते जाओ तो ज्ञान हो जायेगा।

अर्थात् हम स्वयं में यदि विजातीय संस्कार न भरें तो परमात्म-ज्ञान होना कठिन नहीं है, आत्म-साक्षात्कार होना असंभव नहीं है। यही कारण है कि जब राजा परीक्षित को श्राप मिला कि 'सात दिन में मर जाओगे।' तब वे जागतिक संस्कारों को उँडेलकर बैठ गये शुकदेवजी महाराज के श्रीचरणों में तो सात दिन में ही उन्हें ज्ञान हो गया। उनके साथ दूसरे लोग भी सत्संग में बैठे थे लेकिन उनको पूर्ण ज्ञान नहीं हुआ जबकि परीक्षित को हो गया। क्यों ? क्योंकि और सब लोग लोटा भरकर बैठे थे जबकि परीक्षित लोटा खाली करके बैठे थे। ऐसे ही खट्वाँग राजा को एक मुहूर्त में ज्ञान हो गया। राजा जनक को घोड़े की रकाब में पैर डालते-डालते ज्ञान हो गया। इस प्रकार जितनी जल्दी विजातीय संस्कार हट जाते हैं उतनी ही जल्दी परमात्मज्ञान हो जाता है।

यह भी कहना पड़ता है कि ब्रह्म का ज्ञान होगा। वास्तव में ब्रह्म का ज्ञान नहीं होता, ज्ञान ही ब्रह्म है।

*

स्वार्थ और परमार्थ का अंतर

तानसेन सम्राट अकबर के दरबारी गायक थे। एक बार अकबर तानसेन के गुरु हरिदासजी से मिले और उनके गायन को सुनकर मुग्ध हो गये। अकबर ने तानसेन से कहा :

''तानसेन ! गाते तो आप भी अच्छे हैं परन्तु आपके गुरु के गायन में जो आनंद है उसकी प्रशंसा के लिए मेरे पास कोई शब्द नहीं है।''

तानसेन ने कहा : ''मेरे गुरु भगवान को प्रसन्न करने के लिए गाते हैं और मैं आपको प्रसन्न करने के लिए। स्वार्थ और परमार्थ का अंतर प्रत्येक वस्तु के स्तर को गिराता या उठाता है और गायन पर भी यही सिद्धांत लागू होता है।''

प्रेरक प्रसंग

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

वे विघ्नों में भी मुस्कराते रहे !

पंद्रहवीं शताब्दी के अंतिम दिनों की बात है, जब कबीरजी काशी में रहते थे। वे कभी पंडितों को उनकी दुकानदारी के लिए टोकते थे तो कभी मुल्ला-मौलवियों की मनगढ़ंत बातों का खंडन करते थे। अतः, उन्हें अपने जीवन में बहुत विरोध झेलना पड़े। बहुत सारे कष्टों, विरोधों एवं दुःखों के बीच भी वे सदा मुस्कराते ही रहे।

मुस्कराकर गम का जहर जिसको पीना आ गया।
ये हकीकत है कि जहाँ में उसको जीना आ गया॥

यह तो छोटे आदमी की पहचान है कि जरा-सा दुःख आ गया और अति दुःखी हो गये। जरा-सा सुख मिला तो छक गये। बड़े आदमी की पहचान तो यह है कि सुख आये तब भी सम रहे और दुःख आये तब भी सम रहे।

सुख आता है उदार बनाने के लिए और दुःख आता है संसार से वैराग्य दिलाने के लिए। सुख और मान आता है बाँटने के लिए, दुःख और अपमान आता है अहंकार मिटाने के लिए। सत्संग के द्वारा जो लोग यह बात समझ जाते हैं वे अंदर से बहुत ऊँचे हो जाते हैं।

१५वीं शताब्दी के अंत में सिकंदर लोदी बनारस (काशी) पहुँचा। जिन पंडित और मुल्ला-मौलवियों का धंधा कबीरजी के कारण मंद पड़ गया था, उन्होंने सिकंदर लोदी के कान भरे कि 'कबीर मंदिर, मूर्तिपूजा और पंडितों के ही नहीं बल्कि नमाज और रोज़े के विरोध में भी बोलता रहता है।'

बंदगी यानी अल्लाह का ध्यान-स्मरण अंतर में होना चाहिए, भीतर होना चाहिए। ऐसा दिव्य ज्ञान देने के लिए इस महापुरुष ने कहा कि व्यर्थ का दिखावा न करो, औरों को विघ्न डालने का पाप न करो। चिल्लानेवालों को, दिखावा करनेवालों को सुधारने के लिए कबीरजी ने कहा :

कंकड़ पत्थर जोड के लिया मस्जिद बनाय।
तापे चढि मुल्ला बाँग दे क्या बहरा हुआ खुदा ?

उनकी बातें सुनकर सिकंदर लोदी तिलमिला उठा और उसने कबीरजी को अपने पास बुलाया। कबीरजी आये। जैसे और लोग आते हैं तो हाथ उठाकर राम-राम करते हैं या सलाम करते हैं, इस तरह कबीरजी ने सिकंदर लोदी का अभिवादन नहीं किया।

यह देखकर मुल्लाओं ने लोदी को और भड़काया : ''देखो, आपको सिर नहीं झुकाता है, कितना अभिमानी है !''

कबीरजी से पूछा गया : ''आपने बादशाह को सिर क्यों नहीं झुकाया ?''

कबीरजी बोले : ''मुसलमानों के धर्म में आता है कि अल्लाह एक ही है, उसके सिवाय कहीं सिर न झुकाये। उसी एक राजा को मैं पहचानता हूँ। बाकी के सब बंदे आपस में भाई-भाई हैं।''

सब मुल्ला-मौलवी यह सुनकर चुप हो गये लेकिन उनको तो बदला लेना था। कबीरजी पर आरोपों की बौछार होने लगी। सिकंदर लोदी भी धर्मांध था। उसने मुल्ले-मौलवियों की बातों में आकर हुक्म दे दिया : 'कबीर के हाथ-पैर बाँधकर उसे गंगाजी में डाल दो।'

हुक्म का पालन किया गया। जल में कबीरजी ने बहुत कष्ट झेले। कबीरजी के अंतःकरण में परमात्मा का आवेश अवतार हुआ। गंगाजी की लहरों ने कबीरजी की जंजीरें तोड़ दीं और वे तैरते-तैरते किनारे पहुँच गये।

मुल्ला-मौलवियों ने सिकंदर लोदी को फिर बहकाया : ''जहाँपनाह ! यह कबीर बड़ा मायावी आदमी है, बड़ा खतरनाक है। देखो, इसने जादू करके मजबूत जंजीरें तोड़ दीं।''

सिकंदर लोदी ने दूसरा हुक्म दिया : ''लकड़ियों के ढेर में आग लगाकर कबीर को फेंक दो।''

कबीरजी ने ईश्वर से कहा : ''मेरा तो जगत में कोई नहीं है। जल में, थल में, अग्नि में... सबमें तू ही तू समाया है। तेरी मर्जी पूरण हो प्रभु !''

जैसे लहर सागर में मिलकर एक हो जाती है, वैसे ही कबीरजी परमात्मा से एकाकार हो गये और हँसते-खेलते अग्नि से बाहर निकल आये।

मुल्लाओं ने फिर कहा : ''देखा, जहाँपनाह ! कबीर के पास कैसा जादू है !''

सिकंदर आगबबूला हो उठा और बोला : ''कबीर को हाथी के पैरों तले कुचलवाया जाय।''

कबीरजी को बाँध दिया गया और महावत मदमस्त हाथी को उन पर चढ़ने के लिए उकसाने लगा। कबीरजी ने हाथी पर निगाह डाली और 'हाथी में भी तू ही है मेरे प्रभु ! तेरी मर्जी पूरण हो।' ऐसा सोचकर कबीरजी निश्चिंत हो गये।

हाथी के अंदर भी चेतना तो उसी परमात्मा की है। परमात्मा अगर नहीं चाहते तो हाथी की क्या ताकत कि उन्हें कुचल सके ? महावत के खूब उकसाने पर भी हाथी ने एक कदम भी आगे नहीं बढ़ाया !

सिकंदर लोदी देखता ही रह गया ! उसने मुल्ला-मौलवियों की तरफ देखा, पंडित और अन्य विरोधियों की तरफ देखा। सब चुप थे।

सिकंदर लोदी शर्मिंदा होकर कबीरजी के निकट आया एवं अपराधी की नाई सिर झुकाकर बोला :

''आप उच्च कोटि के फकीर हैं, पहुँचे हुए महात्मा हैं। अपनी 'मैं' को मालिक की 'मैं' में मिला चुके हैं। मैं आपको पहचान न पाया। गुस्ताखी माफ हो। आपकी रहमत चाहता हूँ। आप मुझे माफ कर दें।''

सिकंदर ने इतना सताया, इतना परेशान किया फिर भी कबीरजी के चेहरे पर देखो तो वही शांति, निगाहों में वही करुणा और सौम्यता... वे बोले :

''जो ईश्वर को मंजूर था, वही हुआ। तेरा

इसमें क्या दोष ? तेरे दिल की धड़कनें जिससे चलती हैं उसीसे सबकी चलती हैं। उसे राम कह दो, रहमान कह दो, ईश्वर कह दो, अल्लाह कह दो सब एक ही हैं। हिन्दू और मुसलमान तो मनुष्यों ने बनाया है। ईश्वर तो सबमें एक है। हिन्दू हो या मुसलमान, सबके दिल में दिलबर एक ही है। निन्दकों की बातों में आकर राग-द्वेष, ईर्ष्या और पापाचार करके जीव नरक को पाता है किन्तु सिकंदर ! तू चिंता मत कर। तेरा मंगल होगा।''

कबीरजी के द्वारा परमात्मा की कृपा बरसी। सिकंदर का चित्त पवित्र हुआ एवं वह कबीरजी के चरणों में गिर पड़ा।

कबीरजी के साथ कितने अत्याचार हुए लेकिन कबीरजी का मन भगवान में था तो कोई उनका बाल तक बाँका न कर सका। कबीरजी ने स्वयं कहा है :

गंग गोसाइन गहरी गंभीर,
जंजीर बाँधी करी खड़े कबीर।
मन न डिगे तन काहे डराई,
चरनकमल चतुर रह्यो समाई॥
गंगा की लहरी मेरी टूटी जंजीरा,
मृगछाला पर बैठे कबीरा।
कहे कबीर कोई संग न साथ,
जल थल राखत है रघुनाथ॥

'जंजीर बाँधकर मुझे गंगाजी में डाल दिया गया। गंगाजी का जल तो काफी गहरा था, किन्तु मेरा मन तुझसे नहीं डिगा तो तन को कौन डिगा सकता था ? मैं तेरे चरणकमलों का चिंतन कर रहा था इसीलिए गंगा की लहरों ने जंजीरें तोड़ दीं। मेरे संग-साथ तो कोई नहीं है लेकिन जल-थल में जो तेरी सत्ता है उसी सत्ता ने मेरी रक्षा की।'

कहते हैं कि कबीरजी १२० साल जिये। वे विघ्न-बाधाओं से लोहा लेकर भी पाखंड को दूर करने के लिए प्रयत्न करते रहे एवं परमेश्वर की आराधना का प्रचार करते रहे। धनभागी हैं वे लोग जो सर्वत्र अल्लाह या ईश्वर को मानते हैं। जात-पात के उकसानेवालों के चक्कर में नहीं आते हैं, प्रभुप्रीति बढ़ाते जाते हैं।

*

संत को सताने का परिणाम

महाराष्ट्र में तुकारामजी महाराज बड़े उच्च कोटि के संत थे। उनका ननिहाल लोहगाँव में था। इससे वहाँ उनका आना-जाना लगा रहता था। लोहगाँव के लोग भी उन्हें बहुत चाहते थे। वहाँ उनके कीर्तन में आस-पास के गाँवों के लोग भी आते थे।

उनकी वाहवाही और यश देखकर शिवबा कासर उनसे जलता था। नेतागिरी का भी उसे घमंड था कि क्या रखा है बाबा के पास ?

किसीने शिवबा से कहा : ''तुम उनके लिए इतना-इतना बोलते हो किन्तु वे तो तुम्हारी कभी भी निंदा नहीं करते। तुम एक बार तो उनके पास चलो।''

शिवबा ने कहा : ''मैं क्यों जाऊँ उस ढोंगी के पास ? वह सारा दिन 'विट्ठला-विट्ठला' करता है। खुद का समय खराब करता है और दूसरों का भी समय खराब करता है।''

लोगों के बहुत कहने पर एक दिन शिवबा कासर कीर्तन-सत्संग में आ ही गया। दूसरे दिन भी गया। तीसरे दिन ले जानेवालों को मेहनत नहीं करनी पड़ी, वह अपने-आप बड़ी प्रसन्नता से आ गया।

लोगों ने शिवबा से कहा : ''आज तक तो तुम विरोध करते थे। अब यहाँ खुद क्यों आये हो ?''

शिवबा कासर ने कहा : ''यहाँ मुझे बहुत शांति मिलती है, बहुत अच्छा लगता है। यही तो जीवन का सार है। अभी तक केवल नेतागिरी करके तो मैंने अपने-आपको ही ठगा था।''

नेतागिरी से जो आनंद मिलता है उससे तो अनंतगुना आनंद भक्तों को मिलता है। छल-कपट, धोखाधड़ी से जो मिलता है उसकी अपेक्षा तो ईमानदारी से बहुत अधिक मिलता है।

कैसी है सत्संग की महिमा ! शिवबा कासर, जो अपराधीवृत्ति का व्यक्ति था, तुकारामजी के सान्निध्य से भक्त बन गया।

शिवबा कासर की पत्नी अपने पति में आये

इस परिवर्तन से बहुत घबरा गयी। वह सोचने लगी कि 'जो पति पहले मुझ पर लट्टू होते थे, वे अब मेरे सामने देखते तक नहीं हैं। मुझे ही बोलते हैं कि संयम करो। अपनी आयु ऐसे ही नष्ट मत करो। वे तो अब विट्ठल-विट्ठल भजते हुए आँखें मूँदकर बैठे रहते हैं। बड़े भगत बन गये हैं और मुझे भी भक्ति करने के लिए कहते हैं। यह सारा काम उसी बाबा का है।' उसने मन-ही-मन तुकारामजी से इस बात का बदला लेने का ठान लिया।

एक दिन शिवबा कासर ने तुकारामजी से प्रार्थना की : 'आप मेरे घर पर कीर्तन-सत्संग के लिए पधारें।'

तुकारामजी ने प्रार्थना स्वीकार कर ली और वे शिवबा कासर के घर पधारे। शिवबा कासर की पत्नी को तो मानों अवसर मिल गया।

सर्दी के दिन थे। प्रातःकाल जब तुकारामजी महाराज स्नान के लिए बैठे तो उस महिला ने उबलता हुआ पानी तुकारामजी की पीठ पर डाल दिया।

तुकारामजी बोल पड़े : ''अरे, यह क्या किया ?''

महिला : ''महाराज ! सर्दी है इसलिए गरम पानी डाला है।''

तुकारामजी महाराज ने उस महिला से कुछ नहीं कहा किन्तु गर्म पानी से हुई व्यथा का वर्णन करते हुए तुकारामजी ने भगवान से प्रार्थना की :

''सारा शरीर जलने लगा है, शरीर में जैसे दावानल धधक रहा है। हरे राम ! हरे नारायण ! शरीर-कांति जल उठी, रोम-रोम जलने लगा, ऐसा होलिकादहन सहन नहीं होता, बुझाये नहीं बुझता। शरीर फटकर जैसे दो टुकड़े हो रहा है। मेरे माता-पिता केशव ! दौड़े आओ, मेरे हृदय को क्या देखते हो ? जल लेकर वेग से दौड़े आओ। यहाँ और किसीकी कुछ नहीं चलेगी। तुका कहता है, तुम मेरी जननी हो, ऐसा संकट पड़ने पर तुम्हारे सिवाय और कौन बचा सकता है ?''

तुकारामजी ने तो महिला से कुछ नहीं कहा किन्तु परमेश्वर से न रहा गया। उबलते पानी का तपेला उडेला तो तुकारामजी की पीठ पर अ
फफोले पड़े उस कुलटा की पीठ पर।

संत-शरण जो जन पडे सो जन उबरनहार।
संत की निंदा नानका बहुरि बहुरि अवतार।

जो संत की शरण जाता है उसका उद्धार जाता है। जो संत के निंदकों की बातें सुनता है अ संत की निंदा करने लग जाता है वह बार-ब जन्मता और मरता रहता है। उसके मन की शां बुद्धि की समता नष्ट हो जाती है।

कबीरा निंदक ना मिलो पापी मिलो हजार।
एक निंदक के माथे पर लाख पापिन को भार।

वो निंदक लाख पापियों के भार से भवसा में डूब मरता है।

शिवबा कासर पत्नी को ठीक कराने के लि सारे इलाज करते-कराते थक गया। आखिर कि सज्जन ने सलाह दी कि 'जिन महापुरुष को सत के कारण भगवान का कोप हुआ है अब उन महापुरुष की शरण में जाओ। तभी काम बनेगा

आखिर मरता क्या न करता ? शिवबा कास की पत्नी तैयार हुई। उस सज्जन ने बताया :

''आप पुनः तुकारामजी के चरणों में जाओ उनको शीतल जल से स्नान कराओ और स्न किये हुए पानी से जो मिट्टी गीली हो, उसे उठा लेन वही मिट्टी अपनी पत्नी के शरीर पर लगाना त भगवान की कृपा हो जायेगी।''

शिवबा कासर ने ऐसा ही किया। इससे उसक पत्नी के फफोले ठीक हो गये।

शिवबा कासर की पत्नी का हृदय पश्चात से भर उठा। वह फूट-फूटकर खूब रोयी अ तुकारामजी के श्रीचरणों में गिरकर उनसे क्षमायाच की। फिर उसका शेष जीवन विट्ठल के भजन ही बीता।

*

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य ११३ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया मार्च २००२ के अंत तक अपना नया पता भेज दें।

पर्व मांगल्य

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

महाशिवरात्रि महत्त्व

[महाशिवरात्रि : १२ मार्च २००२]

ज्योतिर्मात्रस्वरूपाय निर्मलज्ञानचक्षुषे।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये ॥

'ज्योतिमात्र जिनका स्वरूप है, निर्मल ज्ञान ही जिनके नेत्र हैं, जो लिंगस्वरूप ब्रह्म हैं, उन परम शांत कल्याणमय भगवान शिव को नमस्कार है।'

'स्कंदपुराण' के ब्रह्मोत्तर खंड में शिवरात्रि के उपवास तथा जागरण की महिमा का वर्णन करते हुए सूतजी ऋषियों से कहते हैं :

''माघ मास (हिन्दी फाल्गुन मास) में कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी का उपवास अत्यंत दुर्लभ है। उसमें भी शिवरात्रि जागरण करना तो मैं मनुष्यों के लिए और दुर्लभ मानता हूँ। उससे भी अत्यंत दुर्लभ है शिवलिंग का दर्शन तथा परमेश्वर शिव के पूजन को तो मैं और भी दुर्लभतर मानता हूँ।

सौ करोड़ जन्मों में उत्पन्न हुई पुण्यराशि के प्रभाव से कभी भगवान शंकर की बिल्वपत्र से पूजा करने का अवसर प्राप्त होता है। दस हजार वर्षों तक जिसने गंगाजी के जल में स्नान किया है, उसको जो फल मिलता है वही फल मनुष्य एक बार बिल्वपत्र से भगवान शंकर की पूजा करके प्राप्त कर लेता है। प्रत्येक युग में जो-जो पुण्य इस संसार से लुप्त हुए हैं वे सभी माघ (फाल्गुन) कृष्ण चतुर्दशी अर्थात् शिवरात्रि में पूर्णतः विद्यमान रहते हैं। लोक में ब्रह्मा आदि देवता और वशिष्ठ आदि मुनि इस चतुर्दशी की भूरी-भूरी प्रशंसा करते हैं। इस शिवरात्रि पर यदि किसीने उपवास किया तो उसे सौ यज्ञों से अधिक पुण्य होता है। जिसने एक बिल्वपत्र से शिवलिंग का पूजन किया है, उसके पुण्य की सभता तीनों लोकों में कौन कर सकता है ?''

श्री महाकाल का प्रागट्य

सप्त मोक्षदायिनी पुरियों में अवन्तिका (उज्जैन) भी एक पुरी है, जहाँ भगवान के १२ ज्योतिर्लिंगों में से एक श्रीमहाकालेश्वर विराजमान हैं। महाकाल के प्रागट्य की कथा भी कुछ इस प्रकार आती है :

किसी समय अवन्तिका नगरी में एक वेदप्रिय नामक ब्राह्मण निवास करते थे। वे वेद में निष्ठा रखनेवाले, सात्त्विक चिंतन करनेवाले एवं इन्द्रियसंयमी थे। उनके चार पुत्र थे - देवप्रिय, प्रियमेधा, सुकृत एवं सुव्रत। ये चारों पुत्र भी अपने पिता की तरह धर्माचरण करनेवाले थे। उन चारों पुत्रों ने अपने यौवन को सार्थक किया था। वे इतना संयम-सदाचार पूर्ण जीवन जीते थे कि उनके आध्यात्मिक तेज के परमाणु सारी अवन्तिका नगरी में फैल गये।

उन दिनों दूषण नामक असुर के अत्याचारों से लोग पीड़ित थे। उसने रत्नमाल पर्वत पर तपस्या करके ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त किया था। दुष्ट के पास यदि शक्ति आती है तो वह उसका उपयोग दूसरों को सताने, पीड़ित करने में करता है और सज्जन के पास शक्ति आती है तो वह लोगों की सेवा का कार्य खोज लेता है।

उस दुष्ट असुर ने उज्जैन पर चढ़ाई कर दी और अपने दैत्य साथियों के साथ नगरजनों को सताने लगा। उससे पीड़ित सारे नगरवासी त्राहिमाम् पुकार उठे। मार-काट मचाता हुआ वह असुर वहाँ पहुँचा जहाँ वेदप्रिय ब्राह्मण अपने पुत्र एवं कुछ ब्राह्मणों के साथ भगवान शिव की उपासना में लगे थे। असुरों से ब्राह्मणों को घबराते देखकर वेदप्रिय के पुत्रों ने ब्राह्मणों से कहा :

''आप लोग मत घबराइये। धैर्य रखिये एवं अपनी पूजा में ही संलग्न रहिये। सब ठीक हो जायेगा।''

विश्वास, दृढ़ निश्चय और एकाग्रता बड़े-बड़े विघ्नों को भी हटाने में सक्षम हैं।

असुर दूषण नजदीक आकर 'मारो, काटो, पकड़ो...' कहता हुआ लोगों को आतंकित करने लगा। वेदप्रिय ब्राह्मण ने अपने चारों पुत्रों सहित शिवजी से इस संकट से रक्षा हेतु प्रार्थना की। जहाँ वे लोग प्रार्थना कर रहे थे वहीं भयानक शब्द के साथ एक गड्ढा हो गया जिसमें भगवान शिव प्रगट हो गये और उन्होंने हुंकारमात्र से उस असुर को सेनासहित नष्ट कर डाला।

आकाशे तारकं लिंगं, पाताले हाटकेश्वरम्।
मृत्युलोके महाकालं, लिंगत्रयम् नमोऽस्तुते॥

फिर वे संसार के कल्याण हेतु सदा वहीं वास करने का वरदान वेदप्रिय ब्राह्मण व उसके पुत्रों को देकर अंतर्धान हो गये। तब से भगवान शंकर लिंगरूप में वहाँ स्थित हो गये। भगवान शिव भयंकर हुंकार सहित वहाँ प्रगट हुए थे इसीलिए वह लिंग 'महाकाल' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

*

भील दंपति की शिवभक्ति

भगवान कब, किस रूप में आकर अपने भक्तों को दर्शन दे दें, यह कहना कठिन है। यदि मनुष्य अपने धर्म में अचल रहता है तो भगवत्कृपा अवश्य प्राप्त करता है।

शिवपुराण में एक कथा आती है :

आबू (राजस्थान) के पास एक कंदरा में आहुक और आहुका नामक भील दंपति रहते थे। दोनों पति-पत्नी भगवान शिव के भक्त थे और शिव की आराधना में लगे रहते थे। वे वहाँ आनेवाले अतिथि-अभ्यागत की सेवा भी बड़े प्रेम से करते थे।

एक दिन उनकी परीक्षा लेने के हेतु से भगवान शिव एक यति (साधु) का रूप लेकर उनकी कंदरा के पास आये एवं बोले :

''आज रात के लिए थोड़ा भोजन एवं आश्रय चाहता हूँ। रात में यहाँ रहने के लिए मुझे स्थान दे दो। सबेरा होते ही मैं यहाँ से चला जाऊँगा।''

आहुक ने कहा : ''महाराज ! मैं लकड़ि[याँ] बेचकर भोजन का कुछ सामान लाया हूँ। हम ती[न] इसीमें से खा लेंगे लेकिन आश्रय के लिए आप[को] कोई दूसरी जगह ढूँढ़नी पड़ेगी क्योंकि मेरी कंद[रा] में स्थान बहुत ही थोड़ा है।''

साधु : ''अगर आश्रय की व्यवस्था नहीं [है] तो मैं भोजन भी नहीं करूँगा।''

ऐसा कहकर वे जाने लगे। तब भील की पत्[नी] आहुका ने अपने पति से कहा : ''स्वामी ! अति[थि] तो देवता के समान होता है। आप अतिथि को इ[स] तरह निराश न लौटाइये। अन्यथा हमारे गृहस्थ धर्म के पालन में बाधा पहुँचेगी। आप साधुबाबा [के] साथ सुखपूर्वक कंदरा में रहिये। इस नन्ही-स[ी] गुफा में हम तीन तो नहीं रह सकते इसलिए मैं बाह[र] ही रहती हूँ।''

पत्नी की बात सुनकर भील ने सोचा कि स्त्र[ी] को घर से बाहर निकालकर मैं भीतर कैसे रह सकत[ा] हूँ तथा साधुबाबा का अन्यत्र जाना भी मेरे लि[ए] अधर्म ही होगा। अतः मुझे ही कंदरा के बाहर रहन[ा] चाहिए। जो होनी होगी वह तो होकर ही रहेगी। उसने साधु से कहा :

''ठीक है महाराज ! आप यहीं विश्राम भ[ी] कीजिये।''

फिर भोजन आदि से निवृत्त हो भील ने पत्नी को समझा-बुझाकर कंदरा में भेज दिया और स्व[यं] बाहर पहरा देने लगा। रात में झोंके खाते भील प[र] किसी हिंसक पशु ने आक्रमण किया जिससे भील की मृत्यु हो गयी।

प्रातःकाल उठकर जब साधु ने देखा कि किसी हिंसक पशु ने भील को मार डाला है तब उनको बड़ा दुःख हुआ। वे भील की पत्नी से बोले :

''हे देवी ! मेरे कारण ही आहुक की मृत्यु हु[ई] है। तुम लोगों ने मुझे आश्रय दिया लेकिन तुम्हार[ा] पति चल बसा।''

साधु को दुःख से व्याकुल देखकर आहुक[ा] ने कहा :''स्वामीजी ! आप दुःखी किसलिए हो रहे हैं ? इन भीलराज का तो इस समय कल्याण ही हुआ है। ये धन्य और कृतार्थ हो गये जो इन्हें

ऐसी मृत्यु प्राप्त हुई । मैं भी इनका अनुसरण करूँगी । अतः, आप प्रसन्नतापूर्वक मेरे लिए एक चिता तैयार कर दें ।''

साधु ने स्वयं चिता तैयार की और भीलनी ने अपने धर्म के अनुसार उसमें प्रवेश किया । उसी समय भगवान शंकर अपने वास्तविक स्वरूप में उसके सामने प्रगट हो गये और बोले :

''तुम धन्य हो, धन्य हो । मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम इच्छानुसार वर माँगो । तुम्हारे लिए कुछ भी अदेय नहीं है।''

भगवान शिव के दर्शन एवं उनके वचनों को सुनकर आहुका ऐसी आनंदविभोर हो गयी कि उसे किसी बात की सुध न रही । संसार-सुख भोगने की, पति को जिलाने की कोई वासना उसके चित्त में पैदा नहीं हुई । निर्वासनिक चित्त भगवान को विशेष प्रिय होता है । उसकी इस अवस्था को देखकर भगवान शिव और भी प्रसन्न हो गये और उसके न माँगने पर भी उसे वर देते हुए बोले :

''मेरा जो यतिरूप है यह भावी जन्म में हंस-रूप में प्रगट होगा और प्रसन्नतापूर्वक तुम दोनों का परस्पर संयोग करायेगा । यह भील अगले जन्म में निषध देश की उत्तम राजधानी में राजा वीरसेन का श्रेष्ठ पुत्र होगा । उस समय नल के नाम से इसकी ख्याति होगी और तुम विदर्भ नगर में भीमराज की पुत्री दमयंती बनोगी । तुम दोनों मिलकर राजभोग भोगने के पश्चात् मोक्ष प्राप्त करोगे।''

ऐसा कहकर भगवान शिव उसी समय से वहाँ लिंगरूप में स्थित हो गये । वह भील अपने धर्म से विचलित नहीं हुआ था, इसलिए उस लिंग को 'अचलेश' की संज्ञा दी गयी । अचलेश्वर महादेव भील की अचल श्रद्धा की याद दिलाते हैं ।

भगवान शिव के वरदान के प्रभाव से वे ही आहुक और आहुका अगले जन्म में नल-दमयंती बने । आज भी माउंट आबू में अचलेश्वर महादेव का मंदिर है जिसका यात्री लोग दर्शन करते हैं । जिस कंदरा में वे रहते थे वह कंदरा 'नल गुफा' के नाम से प्रसिद्ध है ।

भेद में अभेद के दर्शन कराता है : होलिकोत्सव

[होलिकोत्सव : २८ मार्च २००२]

फाल्गुन पूर्णिमा को मनाया जानेवाला पर्व 'होली' वर्ष का अंतिम पर्व है। यह ऐसा पर्व है जिसमें सभी वर्णों के लोग बिना किसी भेदभाव के सम्मिलित होते हैं ।

प्राचीन काल में 'होलिकोत्सव' के अवसर पर वेद के **रक्षोहणं बलगहणम्...** आदि राक्षस विनाशक मंत्रों से यज्ञ की अग्नि में हवन किया जाता था और इसी पूर्णिमा से प्रथम चतुर्मास सम्बन्धी 'वैश्वदेव' नामक यज्ञ का आरंभ होता था, जिसमें लोग खेतों में तैयार की हुई नयी आषाढ़ी फसल के अन्न - गेहूँ, जौ, चना आदि की आहुति देकर उस अर्थात् बचे हुए अन्न को यज्ञशेष प्रसाद के रूप में ग्रहण करते थे । यज्ञांत में लोग उस भस्म को सिर पर धारण करके उसकी वंदना किया करते थे, जिसका विकृत रूप आज राख को बलात् लोगों पर उड़ाने के रूप में रह गया है । उस समय का 'धूलिहरी' शब्द ही आज विकृत होकर 'धुलैंडी' बन गया है ।

शब्दकोष ग्रंथों के अनुसार भुनें हुए अन्न को संस्कृत भाषा में 'होलका' नाम से पुकारा जाता है । अतः इसी नाम पर होलिकोत्सव का प्रारंभ मानकर इस पर्व को हम वेदकालीन कह सकते हैं । आज भी होलिकादहन के समय डंडे पर बँधी गेहूँ-जौ की बालियों को भूनते हैं- यह प्राचीन होलिकोत्सव की ही स्मृति दिलाता है ।

वैदिक काल में यज्ञ के रूप में मनाये जानेवाले पर्व होलिकोत्सव में समय के साथ अनेक ऐतिहासिक घटनाएँ जुड़ती गयीं । 'नारद पुराण' के अनुसार यह पवित्र दिन परमभक्त प्रह्लाद की विजय और हिरण्यकशिपु की बहन होलिका के विनाश की स्मृति का दिन है ।

'भविष्यपुराण' में इस पर्व से सम्बन्धित एक और घटना का उल्लेख मिलता है । कहा जाता है कि महाराज रघु के राज्यकाल में ढुण्ढा नामक

राक्षसी के उपद्रवों से भयभीत प्रजाजनों ने महर्षि वशिष्ठ के आदेशानुसार बालकों को लकड़ी की तलवार-ढाल आदि देकर हो-हल्ला मचाते हुए (राक्षसी विनाशार्थ आचरण का अभिनय करते हुए) स्थान-स्थान पर अग्नि-प्रज्वलन तथा अग्नि-क्रीड़ा आदि का आयोजन किया था और इस प्रकार वह राक्षसी बाधा वहाँ सर्वथा शांत हो गयी थी। वर्त्तमान में होलिकोत्सव में बालकों का उपद्रव करना और हो-हल्ला मचाना आदि बातें इसी घटना की देन कही जाती है।

मानव-समाज के हित को ध्यान में रखते हुए हमारे अन्य पर्वों की भाँति होली के पीछे भी ऋषि-मुनियों का एक विशेष दृष्टिकोण रहा है। होली मनाने की रीति मानव-स्वास्थ्य पर बड़ा प्रभाव डालती है। देशभर में एक साथ एक रात में संपन्न होनेवाला होलिकादहन शीत और ग्रीष्म ऋतु की संधि में होनेवाली अनेक बीमारियों जैसे - खसरा, मलेरिया आदि से रक्षा करता है। जगह-जगह पर प्रज्वलित महाअग्नि की प्रदीप्त ज्वालाएँ आवश्यकता से अधिक ताप द्वारा समस्त वायुमंडल को उष्ण बनाकर जहाँ एक ओर रोग के कीटाणुओं का संहार कर देती हैं, वहीं दूसरी ओर प्रदक्षिणा के बहाने अग्नि की परिक्रमा करने से शरीरस्थ रोग के कीटाणु को भी नष्ट करने में समर्थ होती है।

इस ऋतु में शरीर के कफ के पिघलने के कारण स्वाभाविक ही आलस्य की वृद्धि होती है। महर्षि सुश्रुत ने वसंत को कफ-कोपक ऋतु माना है :

कफश्चितो हि शिशिरे वसन्तेऽर्कांशु तापितः।
हत्वाग्निं कुरुते रोगानतस्तं त्वरया जयेत् ॥

'शिशिर ऋतु में इकट्ठा हुआ कफ वसंत में पिघल-पिघलकर कुपित होकर जुकाम, खाँसी, श्वास, दमा आदि नाना प्रकार के रोगों की सृष्टि करता है।'

इसका शमन करने के लिए कहा गया है :

तीक्ष्णैर्वमननस्याद्यैर्लघुरूक्षैश्च भोजनैः।
व्यायामोद्वर्तघातैर्जित्वा श्लेष्माणमुल्बणम् ॥

'तीक्ष्ण वमन, तीक्ष्ण नस्य, लघु रूक्ष भोजन, व्यायाम, उद्वर्तन और आघात आदि का प्रयोग कफ को शांत करता है।'

होली के दिन किया जानेवाला गाना-बजाना, कूदना-फाँदना, भागना-दौड़ना आदि सब ऐसी ही क्रियाएँ हैं जिनसे कफ-प्रकोप शांत हो जाता है और सहसा कोई कफजन्य रोग या अन्य बीमारी नहीं होती।

होली रंग का त्यौहार है। इस पर्व पर जिस रंग के प्रयोग का विधान शास्त्रकारों ने किया है वह है पलाश अर्थात् ढाक के फूलों-टेसुओं का रंग। हमारी संस्कृति में ढाक एक पुनीत वृक्ष माना जाता है। ब्रह्मचारी को उपनयन के समय ढाक का ही दंड धारण करवाया जाता है एवं सर्व-साधारण के लिए यज्ञार्थ समिधा भी ढाक की ही बतलायी गयी है।

ढाक के फूलों से तैयार किया गया रंग एक प्रकार से उसके फूलों का अर्क ही होता है। उस रंग में भीगा हुआ कपड़ा शरीर पर डाल दिया जाय तो रंग शरीर के रोमकूपों के द्वारा आभ्यान्तरिक स्नायु-मंडल पर अपना प्रभाव डालता है और संक्रामक बीमारियों को शरीर के पास फटकने तक नहीं देता। 'यज्ञ मधुसूदन' के अनुसार :

एतत्पुष्पं कफं पित्तं कुष्ठं दाहं तृषामपि।
वातं स्वेदं रक्तदोषं मूत्रकृच्छ्रं च नाशयेत् ॥

'ढाक के फूल कुष्ठ, दाह, वात, पित्त, कफ, तृषा, रक्तदोष एवं मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों का नाश करने में सहायक हैं।'

सिंघाड़े के आटे से तैयार किया गया गुलाल भी ऐसी ही पवित्र वस्तुओं में से है। प्राचीन भारत की होली में पलाश के पुष्पों का रंग, गुलाल, अबीर और चंदन का ही उपयोग किया जाता था। वर्त्तमान में जिन रंगों का प्रयोग किया जाता है उनका निर्माण विभिन्न रासायनिक (कैमिकल) तत्त्वों से होता है जो श्वास एवं रोमकूपों द्वारा शरीर को बड़ी हानि पहुँचाते हैं। अतः इन रासायनिक रंगों से सावधान रहें...

जब वैदिक ढंग से होली मनायी जाती थी, उस जमाने में मानसिक तनाव-खिंचाव आदि नहीं होते थे, किन्तु आज जहरीले रंगों के प्रयोग से, कीचड़ आदि उछालने से एवं शराब आदि पीने-पिलाने से होली का रूप बड़ा विकृत हो गया है।

जहरीले रंगों की जगह पलाश के रंग का प्रयोग

करें तो अच्छा है । इससे भी बढ़कर है कि परम पावन परमात्मा के नाम-संकीर्तन में रंगे-रँगायें एवं छोटे-बड़े, मेरे-तेरे के भेदभाव को भूलकर सभी में उसी एक सत्यस्वरूप, चैतन्यस्वरूप परमात्मा को निहारें तथा अपना जीवन धन्य बनाने के मार्ग पर अग्रसर हों...

होली हुई तब जानिये...

संत भोले बाबा ने वेदान्त छंदावली में कहा है :

होली हुई तब जानिये, पिचकारी सद्गुरु की लगे।
सब रंग कच्चे जायें उड़, इक रंग पक्के में रँगे ॥
नहीं रंग चढ़े फिर द्वैत का, अद्वैत में रँग जाये मन।
है सेर जो चालीस, सो ही जानियेगा एक मन ॥

संतों ने कहा है : 'संसार में हर व्यक्ति अपना-अपना ही रंग लिये खड़ा है। सामान्य मनुष्य पर तो कभी काम की वृत्ति का रंग चढ़ता है, कभी क्रोध की वृत्ति का तो कभी लोभ का रंग चढ़ता है...। मानव इससे इतना विषयासक्त हो जाता है कि उसमें से निकल नहीं पाता। तरह-तरह के रूप, रस, गंध आदि के छींटे जीव का सत्यानाश कर देते हैं। मात्र सद्गुरु ही उस पर एक ऐसा रंग चढ़ाना चाहते हैं जिस पर रूप, रस, गंध आदि का रंग न चढ़ सके।'

इन विषयों के रंग से बचाने के लिए सद्गुरु जो रंग चढ़ाना चाहते हैं, वह है परमात्म-रंग। एक बार उस रंग में रँग गये तो फिर विषयों का रंग जीव पर कतई नहीं चढ़ सकता । वह रंग ऐसा पक्का होता है कि :

साहेब है मेरो रंगरेज चुनरी मोरी रँग डाली ।
धोये से छूटे नहीं दिन दिन होत सुरंग,
शाही रंग छुड़ाय के दियो मजीठा रंग।

सूरदासजी ने इसी बात को अपने ढंग से कहा है :

सूरदास कारी कामरी पर चढ़े न दूजो रंग ॥

हे परमेश्वर ! हे गुरुदेव ! आप हमें भी अपने ऐसे ही रंग में रँग देना ताकि हम पर पुनः विषय-विकारों का रंग न चढ़ सके।

होली के पावन पर्व पर करते यही हैं प्रार्थना ।
इक रंग तेरा ही लगे संसार का कोई रंग ना ॥
होलिकाग्नि में जलें सारी विषय और वासना ।
तव वचन का हो अनुसरण दूर तुमसे हों कभी ना ॥



प्रातः स्मरणीय विश्ववंदनीय
संत श्री आसारामजी महाराज की मातुश्री

पूजनीया श्री श्री माँ महँगीबा (अम्मा)

(गतांक से आगे)

थाऊमलजी के परिवारवालों को लोग बहकाने लगे : 'तुमने क्यों ऐसे गरीब घर में रिश्ता तय किया ? उनके पास है ही क्या ? ...और तुम कितने साधन-संपन्न हो ?'

उधर महँगीबा के परिवारवालों से भी लोग कहने लगे : 'तुम्हारे घर में यदि पावभर आटा नहीं है तो लड़की का गला घोंटकर उसे बोरे में भरकर तालाब में छोड़ आओ। इससे तो उसकी एक बार ही मृत्यु होगी किन्तु उस घर में तो वह रोज मार खायेगी। घुट-घुटके मरने के लिए लड़की को उस घर में क्यों भेजते हो ?'

दोनों सम्बन्धों में कोई तालमेल नहीं। एक ओर एकदम गाय जैसी कन्या तो दूसरी ओर शेरनी जैसी जेठानियाँ। आखिर श्री परशुरामजी को अपने विशेषाधिकार का उपयोग करना पड़ा : 'अगर यह रिश्ता पक्का नहीं हुआ तो मैं अन्न-जल का त्याग कर दूँगा।'

गुरुजी को तकलीफ न हो, इसलिए कन्यादान करनेवालों ने कन्यादान कर दिया और माँ महँगीबा दुलहन बनकर बेराणी गाँव में आ गयीं।''

महँगीबा के ससुरालवाले लोग सोना नहीं पहनते थे। उसकी जगह पर हाथीदाँत (आज) के गहने पहनते थे। महँगीबा की माँ को हाथीदाँत के गहने पहनना जरा-भी पसंद न था। वे बोल पड़ीं :

''मेरी बेटी हाथीदाँत के गहने नहीं पहनेगी।''

होनेवाले दामाद नगरसेठ तो थे ही। स्वयं घर में छोटे थे, किंतु अपने दोनों बड़े भाइयों से होशियार थे। दोनों भाई उन्हींके कहने में चलते थे। पूरा घर उन्हींके भरोसे चलता था। उन्होंने महँगीबा को खूब सोना पहनाया। सिर से पैर तक सोने से सजा दिया। एक तो महँगीबा पहले से ही देखने में सुंदर थी, सोना पहनने पर उनकी सुंदरता और भी निखर उठी।

सौंदर्य के साथ-साथ माँ महँगीबा सद्गुण-संपन्न भी थीं। ससुराल में उन्होंने अपने नम्र व्यवहार से अपने दोनों जेठों का हृदय जीत लिया था। प्रतिदिन सुबह उठकर वे अपने जेठों के चरण छूतीं। सब भाई आपस में एक जैसे दिखते थे। लंबा घूँघट तानने के कारण कौन-से जेठ के चरण छुए यह ख्याल नहीं आता था तो कभी-कभी दो-दो बार भी छू लेतीं। जेठ भी उनकी नम्रता पर खूब प्रसन्न रहते थे।

संतान-प्राप्ति

समय पाकर माँ महँगीबा की कोख से एक स्वस्थ-सुंदर संतान का जन्म हुआ, किन्तु १३ महीने में ही वह चल बसा। पुत्रशोक से व्याकुल माँ महँगीबा का हृदय पुकार उठा : ''हे प्रभु ! दूसरी संतान भले काली-कलूट हो किन्तु उसे जीवित रखना।''

निर्दोष हृदय की प्रार्थना फली एवं जेठानंदजी का जन्म हुआ। वे थोड़े साँवले भी थे। तृतीय संतान कन्या थी, जो २-३ साल में चल बसी। उसके पश्चात् जन्म हुआ मीरा बहन एवं खिम्या बहन का। इन्हींके पश्चात् अवतरित हुए थे हमारे प्यारे-दुलारे सद्गुरु **संत श्री आसारामजी महाराज**। इनके पश्चात् एक बालक एवं एक बालिका का जन्म हुआ किन्तु वे भी चल बसे। अंतिम संतान किश्नी बहन का जन्म भारत में हुआ था।

पूज्यश्री का जन्म

पूज्यश्री का जन्म १७ अप्रैल, १९४१ तदनुसार वैशाख कृष्ण ६ (गुजरात एवं सिंध के अनुसार चैत्र कृष्ण ६), गुरुवार को हुआ था।

(क्रमशः)



यार की मौज

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

(गतांक का शेष)

कुछ समय के बाद धानमंडी के मुखिया ने एक ठीक जगह पर उनके रहने एवं भोजनादि की व्यवस्था कर दी, लेकिन आजाद पंछी पिंजरे में कब तक रह सकता है ? वे महापुरुष बीकानेर में विचरण करने लगे।

उनकी स्थिति ऐसी थी कि आहा !

जब यार की मर्जी हुई तो सर जोड़कर बैठे।
गर घरबार छुड़वाया तो वही छोड़कर बैठे।
नौकरी छुड़वा दी तो वह भी छोड़कर बैठे॥
आये थे यार को पाये का दीदार करने को।
अब हम ही खुद यार के दिलदार हो बैठे॥

यार की मौज ! गज़ब की मस्ती ! यार की मस्ती में मस्त वे 'यार की मौज' महात्मा सन् १९२७ से १९३९ तक यार की मौज का, ईश्वरीय आनंद का प्रसाद बीकानेर और पंजाब की जनता में बाँटते रहे।

एक बार वे महापुरुष घूमते-घामते किसी राजा के महल के पास से गुजरे। महल का दरवाजा खुला था। महल के भीतर एक बड़ा जलतरण तालाब था। महात्मा बोल पड़े : ''यार ! तू ही लहरा रहा है पानी होकर। हम आये हैं यार-के-यार होकर।'' ऐसा कहकर उन्होंने लगा दी छलाँग।

पानी में किसीके कूदने की आवाज सुनकर पहरेदार दौड़े आये कि 'राजासाहब तो सो रहे हैं ! कौन घुस आया है महल में ? किसने राजा के जलतरण तालाब में छलाँग लगा दी ? इसमें तो कभी-कभी रानी साहिबा भी स्नान करती हैं।'

पहरेदारों ने महात्मा से कहा : ''कौन है ? बाहर निकल। तूने राजासाहब के जलतरण तालाब में स्नान करने की हिम्मत कैसे की ? चल बाहर निकल। कौन है तू ?''

महाराज : ''यार की मौज।''

पहरेदार : ''यहाँ आने की हिम्मत कैसे की ?''

महाराज : ''यार की मौज।''

पहरेदार : ''मारेंगे।''

महाराज : ''यार की मौज।''

पहरेदार : ''खाल उतार देंगे।''

महाराज : ''यार की मौज।''

महात्मा पहले के अच्छे तैराक रहे होंगे। पहरेदार कुछ-का-कुछ बोले जा रहे थे और वे मजे से तैरे जा रहे थे।

पहरेदार : ''अरे, लगता है कि यह बाबा कोई धूर्त है अथवा पागल है।''

महाराज : ''यार है।''

पहरेदार : ''हम सिपाही हैं।''

महाराज : ''झूठ बोलते हो। तुम भी यार हो।''

इतने में सुरक्षा अधिकारी आ पहुँचा। सिपाहियों ने कहा : ''ये बड़े साहब हैं। तेरी खाल खिंचवा देंगे। जेल में डाल देंगे।''

महाराज : ''यार-ही-यार है।''

पहरेदार : ''ये यार हैं ?''

महाराज : ''यार ही तो हैं।''

पहरेदार : ''क्या यार-ही-यार बोलते हो ? जल्दी बाहर निकलो नहीं तो हमारी नौकरी चली जायेगी।''

महाराज : ''यार की मौज है।''

पहरेदार : ''राजासाहब सो रहे हैं, सुन लेंगे तो गज़ब हो जायेगा।''

महाराज : ''यार सो रहा है। सुनेगा तो यार जाग जायेगा। यार से मिलेगा, इसमें तुम्हारा क्या जाता है ?''

पहरेदार : ''अरे, बाहर निकल। हमारी नौकरी का सवाल है।''

महाराज : ''यार की मौज है। रहेगी तो रहेगी, जायेगी तो जायेगी। नौकरी-वौकरी क्या है ? यार-ही-यार है। नौकरी करनेवाला यार, नौकरी में रखनेवाला यार, निकालनेवाला यार... यार की मौज है।''

पहरेदार : ''बाबा का बच्चा !''

महाराज : ''बाबा का बच्चा-वच्चा कोई नहीं है। यार-ही-यार है, यार की मौज है।''

पहरेदार : ''अरे, बाबा ! हम हाथ जोड़ते हैं। बाहर निकलो।''

महाराज : ''हाथ जोड़नेवाला यार तू कब तक धोखा देगा ? तू भी यार ही है।''

पहरेदार और अधिकारी मिलकर कहने लगे : ''अरे, कुछ असर होती है कि नहीं ? कान हैं कि नहीं ? तू इंसान है कि घनचक्कर ? निकल मेरे बाप ! निकल। हम पानी में कैसे आयें ? राजासाहब का महल है, कोई दूसरी जगह होती तो तेरी खबर ले लेते। हथकड़ियाँ पड़ जातीं। अब बाहर आ, फिर बताते हैं। बाबा ! बाहर तो आ।''

महाराज : ''बाबा यार हैं।''

पहरेदारों के शोरगुल से राजासाहब की नींद खुल गयी। उस समय बीकानेर का राजा था गंगासिंह। राजा ने खिड़की से झाँककर देखा कि भीड़ जमा हो गयी है। राजा गंगासिंह वहाँ आये। इतने में वे महाराज भी तालाब से बाहर आ गये थे। राजासाहब को देखकर पहरेदार महाराज पर आगबबूले हो गये एवं उन्हें मारने लगे। पहरेदारों ने कहा : ''कितनी देर से बुला रहे थे, बाहर क्यों नहीं आ रहे थे।''

महाराज : ''यार मौज करता है। अब मार खाने का भी मजा ले और मारने का भी मजा ले।''

पहरेदार : ''इतना मारते हैं फिर भी असर नहीं हो रही है।''

महाराज : ''यार मारने का भी मजा ले रहा है और मार खाने का भी मजा ले रहा है।''

राजा गंगासिंह ने देखा कि ये तो गज़ब के बाबा लगते हैं। वे पास आकर पहरेदारों से बोले :

''ऐ मूर्खों ! हट जाओ, हट जाओ। ये कोई पहुँचे हुए महापुरुष लगते हैं। इनके साथ इतनी बेरहमी का व्यवहार ? नालायकों !''

महाराज : ''यार ! यार को मत डाँट। तू ही राजा बनकर बैठा है और तू ही पहरेदार बनकर बैठा है, यार !''

राजा ने बाबा का बड़ा आदर-सत्कार किया।

उनकी बड़ी सेवा-चाकरी की। वे चाहते थे कि बाबा हम पर प्रसन्न रहें। कहीं हमसे नाराज न हो जायें इसलिए उन्होंने माफी भी माँगी।

लेकिन जिनके चित्त में यार-ही-यार है उनको नाराजगी कहाँ और राजीपना कहाँ ? राजा ने माफी माँगी तो बाबा बोले : ''यार ! माफी भी तू ही माँगता है और मारता भी तू ही है।''

महाराज तो वहाँ से चल पड़े। राजा गंगासिंह ने उनके पीछे गुप्तचर लगा दिये ताकि महाराज को कहीं तकलीफ न हो।

सारी तकलीफों पर पैर रखकर ही तो यार की मौज पायी जाती है। शरीर मिथ्या है और शरीर के सम्बन्ध भी मिथ्या हैं। मान मिथ्या है और अपमान भी मिथ्या है, सुख मिथ्या है और दुःख भी मिथ्या है। सत्य तो केवल यार ही है, यार की मौज ही है। ईश्वरीय आनंद ही सत्य है।

सन् १९३८ की बात है। कुछ शरारती लोगों ने किसी दवाई को घोंट-घाटकर ठंडाई में मिला दिया और महाराज के पास लेकर आये। और बोले : ''यार लाया है यार के लिए।''

महाराज : ''अच्छा, यार लाया है यार के लिए तो ले यार।''

ऐसा कहकर महाराज ने वह ठंडाई पी ली। पी तो ली लेकिन उसमें मिली हुई दवा ने अपना असर दिखाया। महाराज को पित्त-प्रकोप हो गया। महाराज की बीमारी से भक्त उदास हो गये। जानकार डॉक्टरों ने कहा : ''बाबा को मौसंबी खिलाओ।''

भक्तों ने पूरा बीकानेर छान मारा। उन्हें कहीं मौसंबी नहीं मिली। मौसंबी मिल नहीं रही थी और इधर महाराज का कंठ सूखा जा रहा था। अब क्या करें ? भक्त बड़े उदास हो रहे थे। भक्तों को दुःखी देखकर महाराज ने पूछा : ''दुःखी क्यों हो रहे हो, यार ?''

भक्तों ने कहा : ''बाबा के लिए मौसंबी नहीं मिल रही है।''

महाराज : ''यार के लिए मौसंबी नहीं मिल रही है ? उस कमरे में यार ने मौसंबी का ढेर लगा दिया है।''

भक्तों ने कमरे में जाकर देखा तो सचमुच में मौसंबी का ढेर पड़ा था। भक्त आश्चर्यचकित हो उ और बोले : ''बाबा ! कहाँ से आयीं ये मौसंबियाँ ?

महाराज : ''अरे, यार ने बना दी।''

एक बार महाराज कहीं जा रहे थे। रास्ते कुत्ते का एक पिल्ला मरा पड़ा था। महाराज ने देख कि पिल्ला सोया पड़ा है तो वे बोल पड़े : ''अ रास्ते में क्यों सोया है, यार ! उठ हम जाग रहे और तू अभी तक सोया पड़ा है ? सुबह गयी, उठ।''

लोगों ने कहा : ''महाराज ! यह तो मरा हुअ पिल्ला है।''

महाराज : ''यार कभी मरता है ? यार, उठ।''

पिल्ला उठकर भागने लगा। कैसी दिव्य थ उनकी सबमें ब्रह्म देखने की भावना !

'यार की मौज बाबा' ने अपने भक्तों को या की मौज में, सर्वेश्वर के आनंद में, प्रभु की भक्ति में सराबोर करते हुए देखा, 'अब यह चोला पुरान हो गया है। अब इसे छोड़ना है।'

सन् १९४० में हरिद्वार में अपने भक्तों के बी महाराज ने कहा : ''अब हम चले। न लकड़िय लाना है, न कंधे पर उठाना है। क्या यार ? तू गंग होकर बह रहा है... यार-से-यार मिलकर एक ह जायेगा, यार।''

भक्तों ने कहा : ''क्या, बाबा ?''

''यार-से-यार मिलने जाता है।''

महाराज ने गंगाजी में गोता मारा, फिर उनक पावन शरीर न दिखा। वे ब्रह्मलीन हो गये।

कहाँ तो सुरक्षा विभाग का अधिकारी और कह यार की मौज करते-करते यार की मौज में ऐ एकरस हो गये कि बस...

बीकानेर नरेश गंगासिंह धनभागी रहा कि ऐसे महापुरुष की सेवा कर पाया... ऐसे ही कबीर के श्रीचरणों की सेवा करके वीरसिंह बघेला धनभाग हुआ... मतंग ऋषि की सेवा करके शबरी भील तर गयी...

सचमुच में वे बड़े धनभागी हैं जो सच्चे संत महापुरुषों की सेवा करके अपना भाग्य सँवार ले हैं। वे अपना उद्धार तो करते ही हैं, अपनी २ पीढ़ियों को भी तार लेते हैं...

*

स्वास्थ्य संजीवनी

वसंत ऋतुचर्या

शीत ऋतु की ठंड घटने लगे और दोपहर में गर्मी पड़ने लगे वह है वसंत ऋतु। फाल्गुन एवं चैत्र मास इस ऋतु का विशेष समय है। इस मौसम में गरम एवं ठंडे दोनों प्रकार के आहार-विहार से बचना हितावह है।

हेमंते चियते श्लेष्मा वसंतकाले प्रकुप्यति।

अर्थात् हेमंत काल में संचित हुआ कफ वसंत ऋतु में कुपित होता है। ऐसा आयुर्वेद का कथन है।

शीत ऋतु में मधुर-स्निग्ध आहार, अति निद्रा एवं ठंडी के कारण शरीर एवं विशेषकर सिर में संचित कफ इस मौसम में पिघलने लगता है, साथ ही मंदाग्नि भी होने लगती है। जिसके कारण कफ, सर्दी, खाँसी, सिरदर्द, टांसिल्स, कान के रोग, गले में सूजन, खसरा, चेचक, कृमि, दाद-खाज जैसे कफ प्रधान रोग एवं कफजन्य सूजन बढ़ जाते हैं। कफज प्रमेह, डायबिटीज़ (मधुमेह) में भी इस ऋतु में वृद्धि होती है।

गलती तो यह होती है कि धूप बढ़ जाने के कारण लोग गर्मी की शुरूआत समझ लेते हैं और गर्मी का आहार-विहार शुरू कर देते हैं और आईस्क्रीम, बर्फ, गन्ने का रस, ठंडे पेय, श्रीखंड आदि का सेवन शुरू कर देते हैं। खुले में सोने एवं ठंडे पानी से स्नान करने के कारण भी कफ को कुपित होने में मदद मिलती है। परिणामस्वरूप कफजन्य रोग आक्रमण कर देते हैं।

जिस आयुर्वेद ने दीपावली में मिठाइयाँ खाने के लिए कहा है उसीने होली में उसका त्याग करके धानी-चने खाने को महत्त्व दिया है। पूरे भारतवर्ष में होली के दिन धानी-चने का सेवन करके कफ की स्निग्धता के आगे रुक्ष गुण रखकर शरीर में समता लाने की सामूहिक व्यवस्था ऋषि-मुनियों की दीर्घदृष्टि का ही परिणाम है। इस ऋतु में आँवला, शहद, मूँग, अदरक, परवल, दालचीनी, धानी, चना, मुरमुरा आदि कफनिवारक पदार्थों का सेवन करना चाहिए।

फाल्गुन में पलाश (टेसु) का महत्त्व है तो चैत्र माह में नीम का महत्त्व है क्योंकि दोनों ही रुक्ष हैं। चैत्र माह में नीम में फूल और नयी कोंपलें आती हैं। उनका १-२ तोला रस ११ दिन पीने एवं उन दिनों में बिना नमक का भोजन करने से पूरे वर्ष तक ज्वर होने की संभावना नहीं रहती है और अच्छा स्वास्थ्य बना रहता है। चर्मरोग, रक्तविकार और अन्य कफ व पित्तदोष के रोग नहीं होते। चैत्र माह में बिना नमक का खाने एवं नवरात्रि में उपवास करने के पीछे हेतु यही है कि कफ के रोगों के सामने रोगप्रतिकारक शक्ति विकसित हो सके। बिना नमक का भोजन करने से बहनों के अत्यार्तव, प्रदर एवं रक्तप्रदर जैसे रोगों में भी लाभ होता है।

इस ऋतु में सरसों के तेल की मालिश करके धूप का सेवन करें फिर पलाश के फूलों का उबटन करके नीम के पानी से (पानी में नीम के पत्ते डालकर) स्नान करने से बहुत लाभ होता है। सुबह योगासन एवं व्यायाम भी करना चाहिए।

शरीर से जहरीले हानिकारक द्रव्यों को निकालने के लिए इस ऋतु में २ से ५ ग्राम हरड़ व शहद सममात्रा में नित्य प्रातः लेना चाहिए।

गुड़, सिंघाड़े, आईस्क्रीम, उड़द, आलू, केले, तिल, दही, मूँगफली, तली हुई चीजें, मिठाई, फल, बेकरी-फ्रिज की चीजें, भैंस का दूध जैसे स्निग्ध एवं मधुर पदार्थ त्याज्य हैं। फिर भी मधुर आहार लेना ही हो तो शहद, खजूर, खारक, बताशे जैसे अल्प स्निग्ध आहार विवेकपूर्वक लेने चाहिए।

दोपहर में सोने से कफ प्रकुपित होता है इसलिए इस मौसम में दोपहर को नहीं सोना चाहिए।

इस ऋतु में किसी भी बीमारी में थोड़े दिन अनाज नहीं लेना हितकर है। भारी आहार न लें। अनार, अंगूर जैसे फल हितकारी हैं। इनके सिवाय अन्य कफकारक फलों के जूस से बचना चाहिए। सेवफल के चार-पाँच टुकड़े तवे पर सेंककर भोजन के बाद खाने से भोजन पचने में मदद मिलती है। इस ऋतु में सूर्योदय से पहले उठना, व्यायाम, दौड़, तेज चलना, रस्सीकूद, प्राणायाम, आसन अधिक हितकारी हैं।

[साँईं श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, सूरत।]

करता है तो कोई योगमार्ग या ज्ञानमार्ग से। इनमें दो का अनुभव होना दुर्लभ माना जाता है। पर भक्ति, योग, ज्ञान तीनों मार्गों का उत्तम अनुभव एवं साथ में ब्रह्मज्ञान की ज्ञाननिष्ठा एक साथ पूज्यश्री की अमृतवाणी में छलकती है तो होना क्या है ? उमड़ा भक्तों का जनसैलाब, सर्वांगसंपूर्ण सत्संग-सुधा का पान करके तृप्त हुए बड़ौदावासी।

इस विश्ववंदनीय लोकलाड़िले संत का हृदय समाज की पीड़ा से व्यथित हुआ। उन्होंने कहा : ''**आज समाज में गरीब और गरीब बनता जा रहा है। इतना शोषित हो रहा है कि जरूरी वस्तुओं के अभाव में जीवन घसीट रहा है। अमीर इतना अधिक पैसा इकट्ठा कर रहा है कि उसकी रात की नींद हराम हो गयी है। हम अपने ही देश में परायों से शोषित हो रहे हैं।**'' अपने मंत्रिमंडल के साथ गुजरात के वर्त्तमान मुख्यमंत्री एवं दो भूतपूर्व मुख्यमंत्री बड़ौदा में पधारे। इतनी विशाल जनमेदिनी देख वे चकित रह गये। नर्मदा का नीर बड़ौदा और कच्छ में जल्दी पहुँचे ऐसी पूज्य बापूजी ने दोनों (श्री नरेन्द्र मोदी एवं भूतपूर्व मुख्यमंत्री अमर सिंह चौधरी) को सेवा दी है। पूज्य बापूजी ने उद्घोष किया : ''**नर्मदे हर नहीं अब बोलो नर्मदे सर्व दे। हरियाली, दूध, दही, मक्खन, घी सर्व सम्पदा नर्मदे सर्व दे।**'' दोनों मुख्यमंत्रियों ने पूज्य बापूजी के आगे शीघ्र नर्मदा का नीर जनता जनार्दन तक पहुँचाने का वचन दिया।

ईश्वरीय शांति के साथ लौकिक जीवन भी शांत हो, सहज हो, सुदृढ़ स्वस्थ हो इसका भी पूज्य बापूजी खूब-खूब ख्याल रखते हैं। मानों पूज्य बापूजी एक शरीर में दिख रहे हैं फिर भी सारे समाज में व्याप्त हैं। समाज की पीड़ा पूज्य बापूजी के हृदय को व्यथित करती है। इस लोकनायक, पतितोद्धारक संत को सभी पार्टी, संप्रदायवाले क्यों अपना मानते हैं ? केवल मानते ही नहीं जानते हैं। क्योंकि सभीकी भलाई, '**सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु**' का संदेश एवं प्रेरणा सब उनके दर्शन-सत्संग से पाते हैं। 'एक में सब, सब में एक' ये पूज्य बापूजी के अमृतवचन मानों उनका जीवन है।

८ लाख वर्गफीट में बना भव्य मंडप-वैकुंठ भी रविवार को छोटा पड़ गया। धन्य हैं बड़ौदा के श्रद्धालु भक्तजन। आर्थिकता में नपेतुले पर धार्मिकता में आगे बढ़े हुए संतप्रेमी भक्तजन पूज्य बापूजी के दर्शन पाने घंटों तक पलकें बिछाये रहे और जाते समय दूर-दूर तक दर्शन की कतारें देख दोनों मुख्यमंत्री दंग रह गये। एक सत्पुरुष के दर्शन के लिए इतनी तपस्या, घर की सुख-सुविधाओं का त्याग, भूख-प्यास, गर्मी सहते उमड़ता जनसैलाब ! मानों कोई महाकुंभ !

पूज्य बापूजी के आगामी सत्संग

(१) मुंबई (सांताक्रुज-पूर्व) : २७ फरवरी ३ मार्च २००२. *पूर्णिमा दर्शन २७ फरवरी।* **कलीना पुलिस ग्राउण्ड। फोन :** (०२२) ८७७९०३०, ८७७९०३१, ५१३७१२९.

(२) औरंगाबाद (साधक एवं शिक्षक शिविर) : ४ से ६ मार्च २००२. हरि ॐ नगर, आर.टी.ओ. आफिस के सामने, रेलवे स्टेशन रोड। फोन : (०२४०) ३३६८७२, ३२४२७०, ३४६३९९.

(३) नासिक (महाशिवरात्रि महोत्सव) : ९ से १२ मार्च २००२. येवलेकर मळा, कॉलेज रोड। फोन : (०२५३) ३४५४४०, ५०४६४५, ५७८७१७.

(४) सूरत होली महोत्सव : २८ से ३१ मार्च २००२. *पूर्णिमा दर्शन २८ मार्च।* **संत श्री आसारामजी आश्रम, जहाँगीरपुरा. फोन :** (०२६१) २७७२२०१, २७७२२०२.

व्यासपीठ पर सत्संग करने जब बापू हैं आते, खिल उठता है तन-मन और दिल के कमल मुसकाते ॥
ज्ञान बापू का है अद्‌भुत और दर्शन इतना पावन, दर्शन से झूमते हैं सब, ज्यों मयूर नाचे सावन ॥



बड़ौदा जैसे बड़े शहर में पूज्य बापूजी के अमृत-वचनों का रसपान करने उमड़ा जनसैलाब मानों महाकुंभ की याद दिला रहा हो...





हर रोज खुशी, हर हाल खुशी...
जब आशिक मस्त फकीर का हुआ तो क्या दिलगिरी बाबा ?
ऐसी खुशिया बाँटनेवाले बापू ने, जब ज्ञानामृत छलकाया ।
पी पी के झूमें बेंगलोरवासी, हर दिल यहाँ मुसकाया ॥



हैदराबाद (आ.प्र.) में पूज्य बापू की ज्ञानगंगा में सत्संगियों ने गोता तो लगाया ही... विद्यार्थियों ने भी अवसर का लाभ उठाकर जीवन सफल बनाया !